वर्ष–2, अंक–7
इंटरनेट संस्करण : 70

# पत्रिका गर्भनाल

ISSN 2249–5967
सितम्बर 2012

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

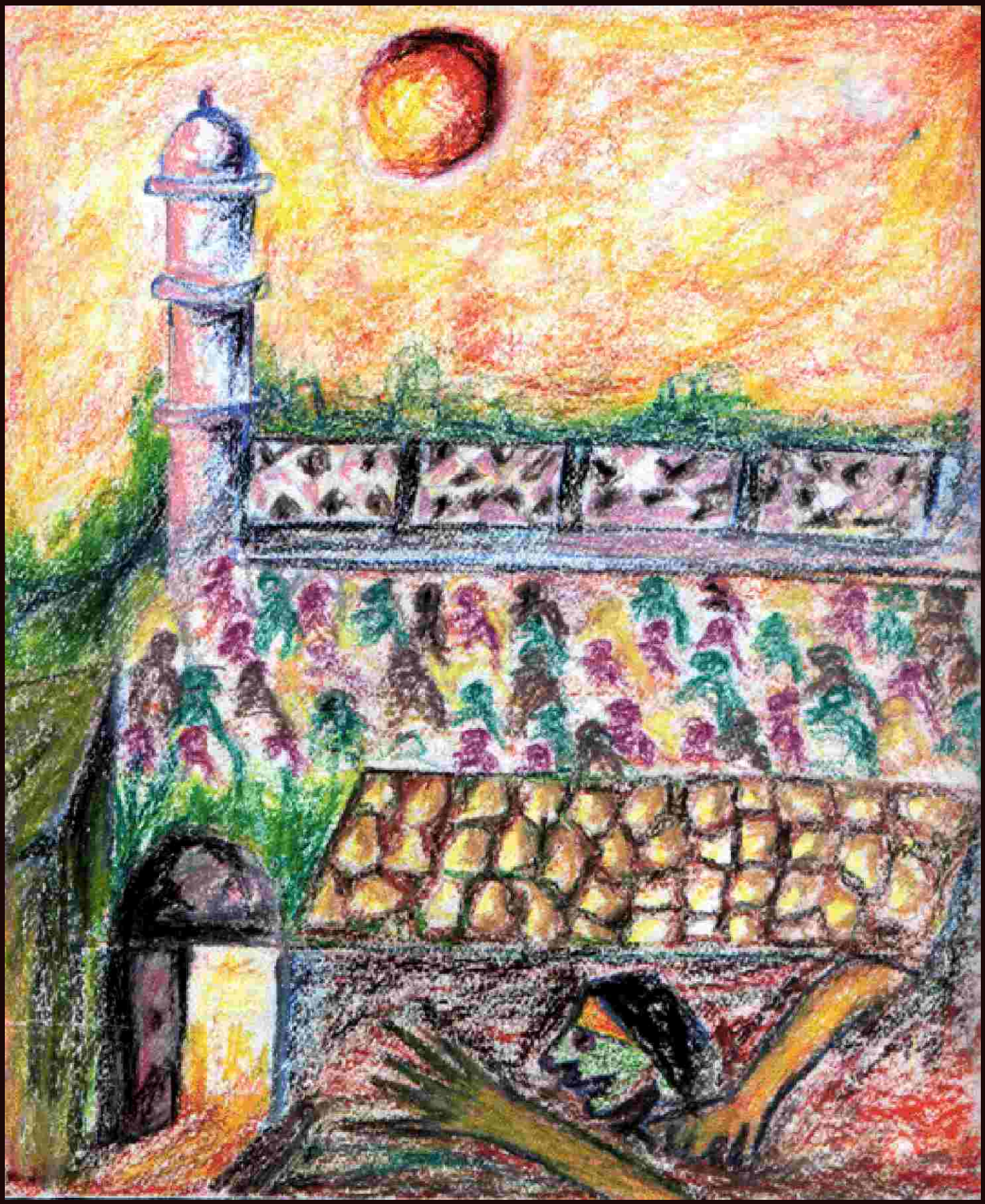

रामानंद शर्मा ramanand210@gmail.com

# अपनी बात

पिछले दिनों टीम अण्णा और फिर रामदेव बारी-बारी से चर्चा में रहे. भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचार विरोध चोली-दामन की तरह स्वातन्त्र्योत्तर भारत में जनता के बीच बहस में रहते आ रहे हैं. भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन शासक पार्टियों को बदलने में कामयाब रहे हैं. यह प्रक्रिया सन् १९६७ से ही जारी है. पर भ्रष्टाचार का दबदबा बढ़ता ही गया है. भ्रष्टाचार पर लगाम नहीं कसी जा सकी, उलटे इसका विस्तार बढ़ता गया है. प्रतिष्ठित भाष्यकार श्री गिरिलाल जैन का एक अवलोकन प्रासंगिक है "The system generates corruption." लगता है कि हमारा तंत्र प्रेशर कुकर के सिद्धान्त पर काम करता है. भ्रष्टाचार विरोधी मुहिम की भूमिका प्रेशर कुकर के सेफ्टी वाल्व की ही रही है. भ्रष्टाचार के बढ़ने पर सिस्टम की सुरक्षा पर दबाव बढ़ता है, तो भ्रष्टाचार विरोधी मुहिम सेफ्टी वाल्व की भूमिका में इस दबाव से सिस्टम को मुक्त करता है. कहना होगा कि इसी सिद्धान्त पर सिस्टम सुरक्षित बना रहता है.

इस संदर्भ में श्री मेघनाद देसाई ('सनडे एक्सप्रेस', १२ अगस्त) के विचार सचमुच गौर करने लायक हैं. वे लिखते हैं : अब कम से कम एक बात तो तयशुदा है. टीम अण्णा की असफलता के बाद अब आमरण अनशन के हथियार का भारतीय राजनीति में इस्तेमाल कोई नहीं करेगा. अण्णा हज़ारे द्वारा किया गया यह एक सकारात्मक योगदान है. सरकार ने इस बार सही रुख अपनाया और जब-तब तेवर दिखाने वाले लोगों से बात करने से इनकार किया. लोकपाल बिल पर विमर्श चल रहा है और मात्र किसी के अहम् की तुष्टि के लिए इसे निपटाया नहीं जा सकता. शासन करने का यही तरीका है. फिर टीम अण्णा का आरोप है कि १५ मंत्री भ्रष्ट हैं. १५ ही क्यों? ७५ क्यों नहीं? अब इस स्टंट का अन्त देखने का भरोसा किया जा सकता है.

फिर भी राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल होने के फैसले का स्वागत किया जाना चाहिए. राजनीति एक गन्दा धन्धा हो सकता है पर गणतांत्रिक समुदायों के पास स्थाई बदलाव लाने का यही एक मात्र रास्ता उपलब्ध है. राजनीति के बिना समाजों को तानाशाह बदलने की कोशिश करते हैं और बदलते हैं, पर उन्हें हमेशा गलत नतीजे मिलते हैं. चीन की एक सन्तान की नीति इसका सबसे उत्तम उदाहरण है.

राजनीतिक दल कायम करना कठिन काम है. बहुत कम लोगों को एहसास है कि महात्मा गाँधी ने केवल उपवास नहीं किया था, उन्होंने संसार के सबसे बड़े राजनीतिक दलों में से एक का निर्माण किया. उन्होंने चार आने (पच्चीस पैसे) की सदस्यता शुल्क तय कर कांग्रेस को आम जनता की पार्टी बना दिया. उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के लिए निर्वाचित प्रतिनिधियों के साथ जिला एवम् प्रान्तीय स्तरों पर समितियों की संरचना विकसित की. उनके द्वारा बनाई गई पार्टी आन्तरिक गणतंत्र का एक स्मारक थी.

राजनीतिक पार्टी बनाना कठिन काम है. टीम अण्णा के आचरण में अब तक जनता की दुर्बलताओं के प्रति बहुत धैर्य नहीं दिखा है. राजनीतिक पार्टी प्रारम्भ करने के लिए पहली जरूरत परिवर्तन की चाह रखने वाले लोगों के प्रति सहानुभूति के साथ उन्हें संयमित रखना भी है, क्योंकि वे बहुत उतावले होते हैं. अपने अस्तित्व के सौ साल से अधिक की अवधि में ब्रिटेन की लेबर पार्टी की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही हैं. इस अवधि में उन्हें अन्तिम सफलताओं के पहले अनेकों बाधाओं का सामना करना पड़ा, अनेकों समझौते करने पड़े, अनेकों विश्वासघात और हताशाओं से जूझना पड़ा है. पार्टी व्यापक पैमाने पर सदस्य बनाती है और चन्दा खुले तौर पर उनसे उगाहती है. इसमें वार्ड मीटिगों में सबसे निचले स्तर के सदस्यों की भागीदारी हुआ करती है. सारे वार्डों के सम्मिलित होने से निर्वाचन क्षेत्र की पार्टी बनती है, जो चुनाव के लिए प्रार्थी चुनती है और क्षेत्र के लिए प्रासंगिक नीति का निर्धारण करती है.

भारत के लिए अब एक ऐसी राजनीतिक पार्टी, जो खुले तौर पर सदस्य बनाए और हर स्तर पर उन्हें ताकत दे, के लिए उपयुक्त समय है. देश के किसी भी राजनीतिक दल में आन्तरिक गणतंत्र नहीं है. नेता हर साल खुले रूप से लड़े गए चुनावों के जरिए निर्वाचित होने चाहिए. पार्टी का हिसाब-किताब पारदर्शी होना चाहिए और हर सदस्य के चंदे का लेखा-जोखा होना चाहिए. किसी भी स्तर पर पद के लिए चुनाव लड़ने वाले पार्टी के हर सक्रिय उम्मीदवार को अपनी (परिवार सहित) सम्पत्ति की सतत घोषणा करते रहना चाहिए. पार्टी में खुली बहस होते रहने चाहिए जिनमें प्रस्ताव औपचारिक तौर पर लाए जाएँ और मतों को रिकॉर्ड किया जाए.

शालीन एवं दिखावारहित महत्वाकांक्षा रखना सबसे कठिन होता है. समाज को बदलना एक कठिन और लम्बा अभियान होता है. एक चुनाव काफी नहीं होगा. टीम अण्णा पार्टी को भी अलादीनी कामयाबी नहीं मिलेगी.

पर सबसे पहले, राजनीतिक पार्टी को चुनावों के बीच की अवधि में काम करते रहना होता है, सदस्यों की भर्ती करते रहना, पार्टी के भीतर और बाहर राजनीतिक बहस जारी रखना, पत्रिकाएँ और पुस्तकें प्रकाशित करते रहना होता है. पचास के दशक में भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी एक अत्यन्त प्रासंगिक और प्रबुद्ध पार्टी हुआ करती थी, तब इसने भारतीय समाज के आधुनिकीकरण में प्रभावकारी योगदान किया है.

**ganganand.jha@gmail.com**

# पत्रिका गर्भनाल

वर्ष-2, अंक-7 (इंटरनेट संस्करण : 70)

सितम्बर 2012



सम्पादकीय सलाहकार

गंगानन्द झा

परामर्श मंडल

वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक

सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग

डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग

डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग

प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार

संजीव जायसवाल



सम्पर्क

डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com



आवरण छायाचित्र

ओमप्रकाश कादयान

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

>> 8

सीखना कुछ मुश्किलें

>> 10

डर्टी विज्ञापन


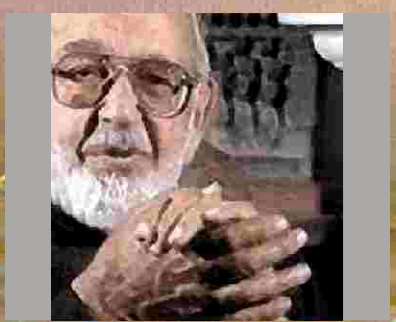


>> 15

अज्ञेय और शीत युद्ध

>> 31

मृत्यु और रोग

# इस अंक में


| | | |
|---|---|---|
| मन की बात : | आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी | 4 |
| विचार : | महेशचंद्र द्विवेदी | 7 |
| | बीनू भटनागर | 8 |
| खोज-खबर : | लोकेन्द्र सिंह | 10 |
| बातचीत : | मधु अरोड़ा | 12 |
| नजरिया : | राजकिशोर | 15 |
| व्याख्या : | मनोज कुमार श्रीवास्तव | 17 |
| चिन्तन : | बृजेन्द्र श्रीवास्तव | 21 |
| वेद की कविता : | प्रभुदयाल मिश्र | 23 |
| गीता-सार : | अनिल विद्यालंकार | 24 |
| प्रश्नोत्तरी : | डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता | 25 |
| पंचतंत्र : | | 26 |
| महाभारत : | | 28 |
| अनुवाद : | मनोहर बाथम | 30 |
| | ताराशंकर बन्दोपाध्याय | 31 |
| कविता : | शकुन्तला बहादुर | 33 |
| | डॉ. सुभाष शर्मा | 34 |
| | शुभदा पाण्डेय | 35 |
| | देवशंकर नवीन | 36 |
| | सूर्यकांत द्विवेदी | 37 |
| शायरी की बात : | नीरज गोस्वामी | 38 |
| कहानी : | नीना पॉल | 39 |
| व्यंग्य : | डॉ. हरि जोशी | 45 |
| किताब : | शशांक दुबे | 48 |
| खबर : | | 50 |
| आपकी बात : | | 51 |

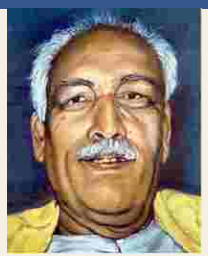

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

जन्म : १९ अगस्त १९०७. आधुनिक युग के मौलिक निबंधकार और उत्कृष्ट समालोचक आचार्य. प्रारंभिक शिक्षा गांव के स्कूल मे. ज्योतिष विषय लेकर आचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की. शिक्षा प्राप्ति के बाद शांति निकेतन पहुँचे और कई वर्षों तक हिंदी विभाग में कार्य करते रहे. शांति-निकेतन में रवींद्रनाथ ठाकुर तथा आचार्य क्षिति मोहन सेन के प्रभाव से साहित्य का गहन अध्ययन और उसकी रचना प्रारंभ की. वे हिंदी, अंग्रेज़ी, संस्कृत और बंगला भाषाओं के विद्वान थे. भक्तिकालीन साहित्य का उन्हें अच्छा ज्ञान था. लखनऊ विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट. की उपाधि देकर उनका विशेष सम्मान किया. उनके निबंधों के विषय भारतीय संस्कृति, इतिहास, ज्योतिष, साहित्य विविध धर्मों और संप्रदायों का विवेचन हैं. उन्हें साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में सन १९५७ में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया. १९७९ में निधन.

*मन की बात*

# आपने मेरी रचना पढ़ी?

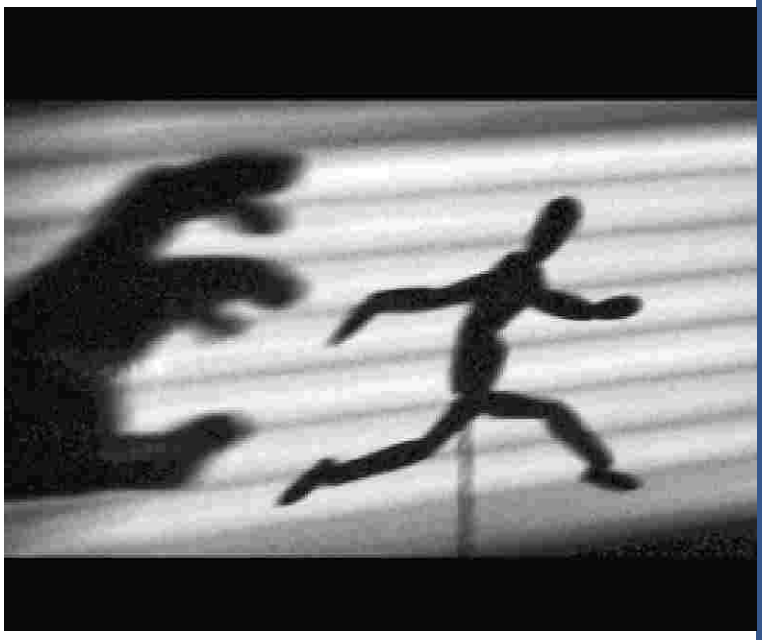

हमारे साहित्यिकों की भारी विशेषता यह है कि जिसे देखो वहीं गम्भीर बना है, गम्भीर तत्ववाद पर बहस कर रहा है और जो कुछ भी वह लिखता है, उसके विषय में निश्चित धारणा बनाये बैठा है कि वह एक क्रान्तिकारी लेख है. जब आये दिन ऐसे ख्यात-अख्यात साहित्यिक मिल जाते हैं, जो छूटते ही पूछ बैठते हैं, 'आपने मेरी अमुक रचना तो पढ़ी होगी?' तो उनकी नीरस प्रवृत्ति या विनोद-प्रियता का अभाव बुरी तरह प्रकट हो जाता है. एक फिलासफर ने कहा है कि विनोद का प्रभाव कुछ रासायनिक-सा होता है. आप दुर्दान्त डाकू के दिल में विनोद-प्रियता भर दीजिए, वह लोकतन्त्र का लीडर हो जायगा, आप समाज सुधार के उत्साही कार्यकर्ता के हृदय में किसी प्रकार विनोद का इंजेक्शन दे दीजिए, वह अखबार-नवीस हो जायेगा और यद्यपि कठिन है, फिर भी किसी युक्ति से उदीयमान छायावादी कवि की नाड़ी में थोड़ा विनोद भर दीजिए, वह किसी फिल्म कम्पनी का अभिनेता हो जायेगा.

एक आधुनिक चीनी फिलासफर को दिन-रात यह चिन्ता परेशान करती रहती है कि आखिर लोकतन्त्र के नेताओं और डिक्टेटरों में अन्तर क्या है. यदि आप सचमुच गम्भीरतापूर्वक छान-बीन करें तो रूजवेल्ट और स्तालिन में कोई मौलिक अन्तर नहीं मिलेगा. या दूर की बात छोड़िए. गांधी और जिन्ना में कोई अन्तर नहीं है- जहां तक शक्ति-प्रयोग का प्रश्न है. गांधी की बात भी कांग्रेस के लिए कानून है और जिन्ना की बात भी मुस्लिम लीग के लिए वेद-वाक्य है. फिर भी एक डेमोक्रेट है और दूसरा डिक्टेटर. क्यों? चीनी फिलासफर ने चार वर्ष की निरन्तर साधना के बाद आविष्कार किया कि डेमोक्रेट हंसना और मुस्कराना जानता है, पर डिक्टेटर हंसने की बात सोचते भी नहीं. उनको आप जहां भी देखें और जब भी देखें, उनकी भृकुटियां तनी हुई हैं, मुट्ठियां बंधी हुई हैं, ललाट कुंचित हैं, अधरोष्ठ दांतों की उपान्तरेख के समानान्तर जमा हुआ है- मानो ये अभी दुनिया को भस्म कर देना चाहते हैं. अगर इन शक्तिशाली डिक्टेटरों में हंसने का थोड़ा-सा माद्दा होता तो दुनिया आज कुछ और हो गयी होती.

> *"संसार के सभी लोग हंस नहीं सकते, इसलिए हंसी एक गुनाह है और चूंकि संसार के सभी लोग थोड़ा-बहुत रो सकते हैं, इसलिए रोना ही वास्तविक धर्म है."*

जब-जब मैं कलकत्ते के चिड़ियाघर में गया हूं, तब-तब मुझे ऐसा लगा है कि संसार के जीवों में सबसे अधिक गम्भीर और चिन्तामग्न चेहरा उस चिड़ियाघर में रखे हुए एक वनमानुष का है. उसको देखते ही जान पड़ता है कि संसार की समस्त वेदना को वह हस्तामलक की भांति देख रहा है और

अपनी सुदूरपातिनी दृष्टि से इन आने-जानेवाले दर्शकों के करुण भविष्य को वह प्रत्यक्ष देख रहा है. मैंने बाद में पढ़ा है कि अफ्रीका के हब्शियों में यह विश्वास है कि वनमानुष मनुष्य की बोली बोल भी सकते हैं और संसार के रहस्य को भली-भांति समझ भी सकते हैं, परन्तु इस डर से बोलते नहीं कि कहीं लोग पकड़कर उन्हें गुलाम न बना लें. यह बात जब तक मुझे नहीं मालूम थी, तब तक मैं समझता था कि यह कलकत्तेवाला वनमानुष ही बहुत गम्भीर और तत्वचिन्तक लगता है. अब मैंने अपनी राय में संशोधन कर लिया है.

> *आप दुर्दान्त डाकू के दिल में विनोद-प्रियता भर दीजिए, वह लोकतन्त्र का लीडर हो जायगा, आप समाज सुधार के उत्साही कार्यकर्ता के हृदय में किसी प्रकार विनोद का इंजेक्शन दे दीजिए, वह अख़बार-नवीस हो जायेगा और यद्यपि कठिन है, फिर भी किसी युक्ति से उदीयमान छायावादी कवि की नाड़ी में थोड़ा विनोद भर दीजिए, वह किसी फिल्म कम्पनी का अभिनेता हो जायेगा.*

वस्तुतः संसार के सभी वनमानुष गम्भीर तत्वदर्शी दिखायी देते हैं.

मैं कभी-कभी सोचता हूं कि आदिम युग का मनुष्य- जबकि वह वानरी योनि से मानवी योनि में नया-नया आया था-कुछ इस कलकतिये वनमानुष की ही भांति गम्भीर रहा होगा. मगर यह भी कैसे कहूं? जेब्रा और गैंडा भी मुझे कम गम्भीर नहीं लगते तथा गधे और ऊंट भी इस सूची से अलग नहीं किये जा सकते. फिर भी इनकी तुलना वनमानुष से नहीं की जा सकती. अन्ततः गधे और वनमानुष की गम्भीरता में मौलिक भेद है. गधा उदास होता है और इसलिए नकारात्मक है, पर वनमानुष सोचता हुआ-सा रहता है और इसीलिए उसकी गम्भीरता में कुछ तत्व है, कुछ सार है. गधे की गम्भीरता प्रोलितारियत की उदासी है और वनमानुष की गम्भीरता वर्गवादी मनीषी की. दोनों को एक श्रेणी में नहीं कहा जा सकता.

परन्तु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि आदि-मानव कुछ गम्भीर, कुछ तत्वचिन्तक और कुछ उदास जरूर था और उसकी उदासी वर्गवादी विचारक की उदासी की जाति की ही रही हो, ऐसा भी हो सकता है. सच पूछिए तो शुरू-शुरू में मनुष्य कुछ साम्यवादी ही था. हंसना-हंसाना तब शुरू हुआ होगा जब उसने कुछ पूंजी इकट्ठी कर ली होगी और संचय के साधन जुटा लिये होंगे. मेरा निश्चित मत है कि हंसना-हंसाना पूंजीवादी मनोवृत्ति की उपज है. इस युग के हिन्दी साहित्यिक जो हंसना नापसन्द करते हैं, उसका कारण शायद यह है कि वे पूंजीवादी बुर्जुआ मनोवृत्ति को मन ही मन घृणा करने लगे हैं. उनकी युक्ति शायद इस प्रकार है- चूंकि संसार के सभी लोग हंस नहीं सकते, इसलिए हंसी एक गुनाह है और चूंकि संसार के सभी लोग थोड़ा-बहुत रो सकते हैं, इसलिए रोना ही वास्तविक धर्म है. फिर भी अधिकांश साहित्यिक रोते नहीं, केवल रोनी सूरत बनाये रहते हैं. जिसे थोड़ा-सा भी गणित सिखाया गया हो, वह बहुत आसानी से इस आचरण की युक्तियुक्तता समझ सकता है. मैं समझा रहा हूं.

यह तो स्वयंसिद्ध बात है कि दुनिया में सुख की अपेक्षा दुःख अधिक है, अर्थात् रोदन हास्य से अधिक है. अब सारी दुनिया के रोदन को बराबर-बराबर बांट दीजिए और हंसी को भी बराबर-बराबर बांट दीजिए. स्पष्ट है कि सबको रोदन हास्य से ज्यादा मिलेगा. अब रोदन में से हास्य घटा दीजिए. कुछ रोदन ही बचा रहेगा. इसका मतलब यह हुआ कि जो कुछ मिलेगा, उससे फूट-फूटकर तो नहीं रोया जा सकता, पर चेहरा जरूर रूआंसा बना रहेगा. यह युक्ति मुझे तो ठीक जंचती है.

लेकिन युक्ति का ठीक जंचना साहित्य की आलोचना के क्षेत्र में सब समय प्रमाण स्वरूप ग्रहण नहीं किया जाता. रहस्यवादी आलोचक यह नहीं मानते कि युक्ति और तर्क में ही सब कुछ है. मैंने आलोचक शब्द के विशेषण के लिए रहस्यवादी शब्द किसी को चौंका देने की मंशा से व्यवहार नहीं किया है. बहुत परिश्रम के बाद मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि हिन्दी में वस्तुतः रहस्यवादी कवि हैं ही नहीं. यदि कोई रहस्यवादी कहा जा सकता है तो वह निश्चय ही एक श्रेणी का आलोचक है. जहां तक हिन्दी बोलनेवालों का संबंध है, रहस्यवादी साधु और फकीर तो बहुत हैं, पर वे सब साधना

की दुनिया के जीव हैं, साहित्य की दुनिया में रहस्यवादी जीव यदि कोई है तो वे निश्चय ही एक तरह के आलोचक हैं और जब कभी मैं रहस्यवादी शब्द की बात सोचता हूं तो काशी के भदैनी मुहल्ले की सड़क पर साधना करने वाला रहमतअली फकीर मेरे सामने जरूर आ जाता है. यह फकीर मन, वचन और कर्म तीनों से विशुद्ध रहस्यवादी था. 'अनिकेत' वह जरूर था, पर उसके बड़े-से-बड़े निन्दक को भी यह कहने में जरूर संकोच होगा कि वह 'स्थिरमति' भी था.

सो, मैंने एक दिन देखा कि यह रहमतअली शून्य की ओर आंखें उठाये हुए किसी अदृश्य वस्तु पर निरन्तर प्रहार कर रहा है. लात, मुक्के, घूंसे-एक, दो, तीन... लगातार. दर्शक तो वहां बहुत थे, कुछ सहमे हुए, कुछ भक्तियुक्त, कुछ 'यों ही-से' और कुछ गम्भीर. एकाध मुस्करा भी रहे थे. इन्हें देखकर ही मुझे रहस्यवादी

> *"पढ़नेवाला आलोचना नहीं करता, आलोचना करनेवाला पढ़ता नहीं-यही तो उचित नाता है. एक ही आदमी पढ़े भी और लिखे भी या पढ़े भी और आलोचना भी करे या लिखे भी इत्यादि-इत्यादि, तो साहित्य में अराजकता फैल जाय."*

आलोचकों की याद आयी. सारा काण्ड कुछ ऐसा अजीब था कि विनोद की एक हल्की रेखा के सिवा तत्वज्ञान तक पहुंचा देने का और साधन ही नहीं था. तब से जब देखता हूं कि कोई शून्य की ओर आंखें उठाये है और किसी अदृश्य वस्तु पर निरस्त प्रहार कर रहा है, तब मुझे रहस्यवाद की याद आये बिना नहीं रहती. सो, यह रहस्यवादी दल युक्ति नहीं माना करता. 'युक्ति' शब्द में ही (युज्/ति) किसी वस्तु से योग का संबंध है. और यह मान लिया गया है कि योग दृश्य-वस्तु से ही स्थापित किया जा सकता है. अदृश्य के साथ योग कैसा?

आसमान में निरन्तर मुक्का मारने में कम परिश्रम नहीं है और मैं निश्चित जानता हूं कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हंसी-खेल नहीं है. पुस्तक को छुआ तक नहीं और आलोचना ऐसी लिखी कि त्रैलोक्य विकम्पित! यह क्या कम साधना है? आये दिन साहित्यिकों के विषय में विचार होता ही रहता है और इन विचारों पर विचार लिखनेवाले बुद्धिमान लोग गम्भीर भाव से सिर हिलाकर कहते हैं- आखिर साहित्यिक कहें किसे? बहसें होती हैं, अखबार रंगे जाते हैं, मेरे जैसे आलसी आदमी भी चिन्तित हो जाते हैं और अन्त में सोचता हूं कि 'साहित्यिक' तो साहित्य के संबंधी को ही कहते हैं न? सो, संबंध तो कई तरह के हैं. बादरायण एक है. आपके घर अगर बेर के फल हैं, मेरे घर बेर के पेड़, तो इस संबंध को पुराने पण्डित 'बादरायण' संबंध कहेंगे. साहित्य से संबंध रखनेवाले जीव पांच प्रकार के हैं- लेखक, पाठक, सम्पादक, प्रकाशक और आलोचक. सबके क्षेत्र अलग-अलग हैं. पढ़नेवाला आलोचना नहीं करता, आलोचना करनेवाला पढ़ता नहीं-यही तो उचित नाता है. एक ही आदमी पढ़े भी और लिखे भी या पढ़े भी और आलोचना भी करे या लिखे भी इत्यादि-इत्यादि, तो साहित्य में अराजकता फैल जाय. इसीलिए कोई जब एक लेखक से पूछता है कि आपने मेरी अमुक रचना पढ़ी, तब जी में आता है कि कह दूं, 'डॉक्टर के पास जाओ. तुम्हारे दिमाग में कुछ दोष है.' पर डॉक्टर क्या करेगा? विनोद का इंजेक्शन किसी फैक्टरी ने अभी तक तैयार नहीं किया. इसलिए मुस्कराकर चुप लगा जाता हूं. मेरे एक हौमियोपैथी मित्र का दृढ़ मत है कि विनोद की कमी दूर करने के लिए कोई इंजेक्शन तैयार किया जा सकता है. वे इस बात का प्रयत्न भी कर रहे हैं कि किसी हंसोड़ की छाया किसी तरह अलकोहल में घुलाकर उस पर से विनोद की दवा तैयार करें और चिकित्सा की और साहित्य की दुनिया में एक ही साथ क्रान्ति कर दें. पर वह अभी प्रयोगावस्था में ही हैं. तब तक मुझे भी सब सहना पड़ेगा और सहे भी जा रहा हूं. ■

महेशचंद्र द्विवेदी

७ जुलाई, १९४१ को मानीकोठी, इटावा में जन्म. लखनऊ विवि से भौतिकी में एम.एस.सी. गोल्ड मेडलिस्ट, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से सोशल प्लानिंग में एस.एस.सी. के अलावा डिप्लोमा इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की उपाधियाँ हासिल कीं. प्रकाशित पुस्तकें : उर्मि, भीगे पँख - उपन्यास, सर्जना के स्वर, अनजाने आकाश में - कविता संग्रह, एक बौना मानव, लव-जिहाद - कहानी संग्रह, सत्यबोध- कहानी संग्रह, क्लियर फ़ंडा- व्यंग्य संग्रह, भज्जी का जूता- व्यंग्य संग्रह, प्रिय अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग- संस्मरण. लंदन, डिट्रौइट, सिन्सिनाटी, राली, शिकागो, एटलांटा, बर्मिंघम एवं वूल्वरहैम्प्टन में मंचीय काव्य पाठ. सम्प्रति- पुलिस महानिदेशक के पद से सेवानिवृत्त.

संपर्क : 'ज्ञान प्रसार संस्थान', १/१३७, विवेकखंड, गोमतीनगर, लखनऊ. ईमेल : mcdewedy@yahoo.com

विचार

# लैंडुडनो में लड्डू, सैक्रामेंटो में समोसा

मैं लंदन में ऑक्सफ़र्ड स्ट्रीट के ग्रोसरी स्टोर में घुसकर पूछ रहा था, 'डू यू हैव टंग-स्टिक?' और दुकानदार मुझे ऐसे घूरकर देख रहा था जैसे मैं अभी-अभी अजायबघर से लाया गया हूं; फिर वह बोला था, 'ह्वाट? अ टंग-स्टिक?' जब मैंने कहा, 'यस! ए मेटल और प्लास्टिक स्टिक टु क्लीन दी टंग', तो वह मुझे आश्चर्यचकित करता बोला था, 'ह्वाई डू यू नीड टु क्लीन दि टंग?'

और मैं अपना सिर धुनता हुआ बाहर चला आया था. इस घटना के अनेक साल बाद इंग्लैंड जाने पर न सिर्फ़ लंदन में टंग-स्टिक की अनेक वैराइटी मिलीं, वरन् ब्रिटेन के पश्चिमी समुद्री किनारे पर वेल्स में स्थित लैंडुडनो कस्बे के एक रेस्टोरेंट में जब मैं मेन्यू पढ़ने लगा तो लड्डू का नाम पढ़कर सुखमय आश्चर्य में डूबने उतराने लगा था. उसके चार साल बाद सैक्रामेंटो (कैलीफ़ोर्निया) के रेस्ट्रॉ में समोसा खाने को मिला और ब्राजील के एक जिम में नियमित रूप से होने वाले आसन-प्राणायाम में भाग लेने के उपरांत पास के रेस्ट्रॉ में बड़ा खाने को मिला. तब मुझे विश्वास हो गया कि सचमुच वैश्वीकरण हो रहा है और देर से आने के बावजूद इंडिया इस दौड़ में अधिक पीछे नहीं है.

सदियों तक विदेशियों के आक्रमण सहने और उनमें पराजय का मुंह देखने के बाद इंडिया के लोग बहुत कुछ घरघुस्सू हो गये थे - यहां तक कि मध्यकाल में यह मान्यता हो गई थी कि विदेश में जाने वाले का धर्मभ्रष्ट हो जाता है और लौटने पर उसका हुक्का-पानी बंद कर दिया जाता था. इस वजह से भारतीय संस्कृति, जो विचारों की स्वतंत्रता एवं सहनशीलता स्वीकार करने में संसार की अप्रतिम संस्कृति है, का ज्ञान एवं प्रसार विदेशों में नहीं हो सका था. पर कमाल है आज के वैश्वीकरण का कि इटली का स्वादिष्ट पीज़ा, चीन और थाइलैंड का लाजवाब सी-फ़ूड, जापान की सूशी मछली, लखनऊ का मुर्ग-दो-प्याज़ा, चेन्नई का इडली दोशा - यानी कि सभी देशों का सभी कुछ जो लज़ीज़ है- टोरांटो या होनोलूलू के रेस्ट्रॉ में खाया जा सकता है और स्पेन का टैप-डांस, इंडिया का भरतनाट्यम, रूस का बैले या ब्राजील का साम्बा लंदन के अलबर्ट हाल में बैठकर देखा जा सकता है और यदि किसी के पास दूर दराज़ की यात्रा करने के साधन उपलब्ध नहीं हैं तो वह झुमरी तलैया, याकोहोमा या रियकजैविक (आइसलैंड) में घर में बैठे रहकर इंटरनेट पर इनकी विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकता है और लासवेगस, पर्थ, ब्लाडीवोस्टक से लेकर सैंफ़्रई तक के मनभावन चित्र देख सकता है.

आज के युवा और वृद्ध दोनों - अर्थात वे सभी लोग जो २१वीं सदी के इस घटती दूरी एवं एकीकृत होती संस्कृति के युग में जी रहे हैं - विशेष सौभाग्यशाली हैं. शहंशाह अकबर को अपने शाही जलाल के बावजूद पूरी ज़िंदगी में जितनी दूर की धरती और प्रकृति के जितने जलवे देखने को मिले होंगे, उतने तो सिर्फ़ दो-चार हज़ार रुपये खर्च करके अधिकतम एक हफ्ते में कोई ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा देख सकता है. कहते हैं कि एक ग़ज़ल या एक नाच के पसंद आ जाने पर बादशाह अकबर जागीरें लुटा देता था. अच्छा हुआ कि वह आज के ज़माने में नहीं पैदा हुआ, नहीं तो देवदास जैसी एक पिक्चर पर तो अपनी बादशाहत ही लुटा देता ओर फिर बेचारा दर-दर की ठोकरें खाता फिरता.

खान-पान, जीवनशैली और सभ्यताओं के पारस्परिक सम्मिश्रण का यह एक संक्रमण काल है. यह सच है कि भारत की प्राचीन संस्कृति को पश्चिमी संस्कृति इंटरनेट और टी.वी. के माध्यम से बौम्बार्ड कर रही है और हमारे युवाओं पर पश्चिमी प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है, परंतु यह भी सच है कि पश्चिम के लोग जो मिर्च खाने से ऐसे डरते थे जेसे बिच्छू को जुबान पर रख रहे हों, अब चटखारे ले-लेकर मिर्ची-पकौड़ी खाने लगे हैं और अगर हम अंग्रेज़ी सीखने को बेताब हैं तो पश्चिमवासियों की रुचि भी हिंदी में तेजी से बढ़ रही है. संक्रमण काल समाप्त होने पर अवश्य ही एक मिश्रित संस्कृति का उदय होगा. इस मिश्रित संस्कृति में वर्तमान संस्कृतियों के जो सुंदर, लाभकारी, एवं सुग्राह्य सिद्धांत होंगे, वे रहेंगे. परंतु यह भी सच है कि ऐग्रेसिव मार्केटिंग के इस युग में मिश्रित संस्कृति में उन संस्कृतियों का अंश अधिक रहेगा, जिनको आज अधिक सक्रियता एवं समझदारी से अंतर्राष्ट्रीय मंच पर बारम्बार प्रस्तुत किया जायेगा.■

> *अगर हम अंग्रेज़ी सीखने को बेताब हैं तो पश्चिमवासियों की रुचि भी हिंदी में तेजी से बढ़ रही है. संक्रमण काल समाप्त होने पर अवश्य ही एक मिश्रित संस्कृति का उदय होगा.*

बीनू भटनागर

४ सितम्बर १९४७ को बुलन्दशहर में जन्म. लखनऊ विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में एम.ए. की उपाधि. हिन्दी साहित्य में हमेशा से रुचि रही, लेकिन रचनात्मक लेखन देर से आरंभ किया. नामी पत्र-पत्रिकाओं में कवितायें, आलेख आदि प्रकाशित.

सम्पर्क : ए-१०४, अभियन्त अपार्टमेन्ट, वसुन्धरा एनक्लेव, दिल्ली-११००९६ ईमेल : binu.bhatnagar@gmail.com

विचार

# सीखना कुछ मुश्किलें

सीखना एक जटिल प्रक्रिया है. जीवन भर व्यक्ति कुछ न कुछ सीखता रहता है. सीखने का सबसे महत्वपूर्ण समय बच्चे के जीवन के आरंभिक वर्ष होते हैं जब वह पलटना, पहचानना, बैठना खड़े होना फिर बोलना सीखता है. इसके बाद अक्षर आकृतियां और रंग पहचानता है धीरे-धीरे वर्णमाला लिखना, शब्द लिखना, फिर वाक्य बनाकर लिखना सीखता है. अंकों को भी मौखिक फिर लिखित मे सीखकर अंक गणित सीखता है. आरंभिक वर्षों में ये सब चीज़ें थोड़ा आगे पीछे सभी बच्चे सीख लेते हैं.

कुछ बच्चों को ये सामान्य सी बातें सीखने में दिक्कत होती है, ये दिक्कतें कई तरह से सामने आती हैं और इनकी गंभीरता भी अलग-अलग होती है. कभी कभी माता-पिता को बच्चों की मानसिक स्थिति का अंदाज़ा भी नहीं होता इसलिये कभी वो उन्हें आलसी मान लेते हैं कभी बेहद शर्मीला या शैतान मान लेते हैं फिर डांट-डपट शुरू हो जाती है और बच्चे की सीखने की दिक्कतें बढ़ती जाती हैं. कभी-कभी उन्हें मन्द बुद्धि भी मान लिया जाता है.

सीखने की क्षमता कम होने का यह अर्थ बिलकुल नहीं है कि बच्चे का बौद्धिक स्तर कम है. उनका सुनना और देखना भी सामान्य होता है फिर भी सीखना मुश्किल होता है. मस्तिष्क की नाड़ियाँ कुछ अलग तरह से गठित होती हैं कि कानों और आँखों से मिली सूचना का मस्तिष्क ठीक से विश्लेषण और संश्लेषण (प्रौसैसिंग) नहीं कर पाता. कुछ चीजें ये बच्चे बड़ी जल्दी सीख लेते हैं जबकि कुछ को सीखना काफी कठिन होता है.

बच्चों को कभी न कभी किसी न किसी चीज़ को सीखने में कठिनाई हो सकती है, यह स्वाभाविक है, पर लगातार बहुत समय तक ज़ोर से न पढ़ पाना या लिख न पाना या अंकों और गिनती को सही न पहचान पाना संकेत हो सकता है कि यह सीखने मे आने वाली (लर्निंग डिसआर्डर) समस्या है. ये कई प्रकार की हो सकती हैं, जिनके लक्षण व निदान भी अलग-अलग होते हैं. इन्हें मनोरोग नहीं कहा जा सकता.

सीखने मे यदि कोई विशेष दिक्कत आती है तो सबसे पहले तो सही निदान होना आवश्यक है. हर बच्चे की समस्या एक-सी नहीं होती. उन्हें प्रशिक्षित शिक्षक अपने अलग तरीकों से सिखा कर बहुत हद तक उनकी क्षमताओं का

विकास करने में सहायक हो सकते हैं. सीखने मे आई मुश्किलों पर काबू पाया जा सकता है. माता-पिता को धैर्य रखने और सोच को सकारात्मक रखकर बच्चे का मनोबल बढ़ाने की ज़रूरत होती है.

जब भी ऐसा लगे कि बच्चा पिछड़ रहा है तो एक बार स्कूल काँउसैलर या बाल मनोवैज्ञानिक से संपर्क करने मे हिचकिचाना नहीं चाहिये, हो सकता है कोई समस्या हो ही नहीं और अगर होगी भी तो जल्दी निदान होने से समस्या पर काबू पाना भी अपेक्षाकृत आसान होगा, पर अक्सर देखा गया है कि मनोवैज्ञानिक से सलाह लेना लोगों को पसन्द नहीं होता. ये धारणा सही नहीं है.

सबसे पहले पढने-लिखने और गणित सीखने की समस्या के बारे मे चर्चा करते हैं. पढ़ने की समस्या को डायसलैक्सिया (dyslexia) कहते हैं, आवाज़ के साथ अक्षर को जोड़कर समझना, अक्षरों से शब्द बनाना शब्दों के अर्थ समझना फिर वाक्य बनाना डायसलैक्सिया से पीड़ित बच्चों के लिये कठिन होता है, इससे पढ़ने की सामान्य क्रिया में आयु के अनुसार वे पिछड़ते जाते हैं. डायसलैक्सिया बहुत हल्का भी हो सकता है थोड़ा अधिक भी. इन बच्चों को शब्दों को, विचारों को समझना, अच्छी तरह पढ़ पाना मुश्किल होता है. जाहिर है कि शब्दकोश भी आयु के साथ नहीं बढ़ पाता.

लिखने की दिक्कत को डायसग्राफिया (dysgraphia) कहते हैं. इसमें शब्दों को समझकर लिखने की प्रक्रिया आती है. अक्सर लिखाई बेहद ख़राब होती है शब्द उलटे पुलटे हो जाते हैं जैसे ढ, ड में या ज, च मे अंतर कर पाना मुश्किल होता है. बहुत धीरे लिखते हैं. अलग-अलग जगह पर एक शब्द के स्पैलिंग अलग-अलग लिख देते हैं. कभी-कभी नकल करके लिखना भी संभव नही होता.

जिन बच्चों को अंकों को समझने में या गिनती और सामान्य जोड़ घटाना सीखने में कठिनाई होती है उसे डायसकैलकुलिया (dyscalculia) कहते हैं.

> *परेशानियों में घिरे बच्चे बहुत दबाव में रहते हैं, अगर अध्यापक और माता-पिता भी उनकी परेशानी न समझकर उन्हें प्रताड़ित करते रहें तो वे आत्म ग्लानि, हीन भावना और चिन्ता से ग्रस्त हो जाते हैं. ऐसे में उनकी कार्यक्षमता और गिर जाती है.*

डायसप्रेक्सिया (dyspraxia) में हाथ, पैर, उंगलियों, आँखों के काम में ताल मेल बिठाना कठिन होता है इसलिये आयु के अनुसार बटन लगाना, ज़िप लगाना, कूदना या लिखना मुश्किल हो जाता है.

डायसफेसिया (dysphasia) में भाषा के ज्ञान की कमी की वजह से अपनी बात दूसरों से कह पाना या उनकी बात समझ पाना कठिन हो जाता है. कोई कहानी सुना पाना या कविता सुना पाना मुश्किल होता है. विचारों का संचार, आदान प्रदान करना आयु के अनकूल विकसित नहीं हो पाता.

इन परेशानियों में घिरे बच्चे बहुत दबाव में रहते हैं, जब वे देखते हैं कि जो काम उनके साथी इतनी सरलता से पूरा कर लेते हैं उसे पूरा करना उनके लिये बड़ा संघर्ष होता है, फिर अगर अध्यापक और माता-पिता भी उनकी परेशानी न समझकर उन्हें प्रताड़ित करते रहें तो वे आत्म ग्लानि, हीन भावना और चिन्ता से ग्रस्त हो जाते हैं. ऐसे में उनकी कार्यक्षमता और गिर जाती है. सबसे ज्यादा ज़रूरी है. समस्या का सही आँकलन होना, उसके बाद काउन्सलिंग और योग्य प्रशिक्षित अध्यापक द्वारा शिक्षा मिलना, धीरे-धीरे सिखाने की ये तकनीकें माता पिता भी सीख लेते हैं.

पहले माना जाता था कि मस्तिष्क की हालत में सुधार नहीं होता, पर नये अनुसंधानों से पता चला है कि मस्तिष्क की नई कोशिकायें प्रशिक्षण और लगातार अभ्यास से धीरे-धीरे अपनी बनावट बदल सकती हैं और ये दोष बड़े होते-होते बहुत कम हो सकते हैं.

इसके अतिरिक्त औटिज़्म (autism) और अटैंशन डैफिसिट हायपर एक्टिविटी डिसऔर्डर (attention deficit hyper activity disorder) का जिक्र करना भी आवश्यक है. इन दोनों में भी सीखना कठिन हो जाता है. जबकि बुद्धि का स्तर कम नहीं होता. औटिज़्म से ग्रस्त बच्चे सामाजिक व्यवहार में बहुत कच्चे होते हैं. वे आँख मिला कर बात नहीं कर पाते. भाषा भी टूटी-टूटी होती है, सीधी सीधी बात समझ लेते हैं. हंसी-मज़ाक नहीं समझ पाते. दूसरों की बात या हाव भाव समझना इनके लिये मुश्किल होता है. वक्त के हिसाब से अपनी दिनचर्या के काम करते हैं. कोई बदलाव पसन्द नहीं करते. कुछ भी सिखाने के लिये काफी मेहनत करनी पड़ती है. औटिज़्म बहुत हल्का भी हो सकता जो ज़्यादा प्रभावित न करे.

अटैंशन डैफिसिट हायपर ऐक्टिविटी डिसऔर्डर (ADHAD) में बच्चे को ज़रूरत से ज़्यादा शैतान या चंचल मान लिया जाता है. ये बच्चे ज़रा सी देर भी एक जगह बैठे नहीं रह सकते, किसी चीज़ में ध्यान लगाना कठिन होता है, इसलिये ये सीखने में या पढ़ने में पिछड़ जाते हैं. अपने व्यवहार पर काबू रखना इनके बस में नहीं होता अतः डांट-डपट का कोई असर नहीं होता. इन्हें इलाज की ज़रूरत होती है. सीखने की सीमित क्षमताओं के बावजूद इन सभी बच्चों को बहुत कुछ सिखाया जा सकता है. सबसे पहले सही निदान के लिये विशेषज्ञ चुनने का सवाल है. स्कूल के काँउसलर से बात करनी चाहिये, अध्यापकों की राय भी लेनी चाहिये, माता-पिता को भी बच्चे की क्षमताओं और सीमाओं को समझना चाहिये, इसके बाद बाल मनोवैज्ञानिक, न्यूरोसायकोलोजिस्ट, क्लिनिकल सायकौलोजिस्ट तथा कुछ और विशेषज्ञ या उनमें से कोई एक या दो लोग सही निदान करने के लिये कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षण करेंगे. माता-पिता स्कूल काउंसलर और अध्यापकों से भी बच्चे का ब्यौरा लेना पड़ता है. जब एक निष्कर्ष पर पहुँच जायेंगे तो प्रशिक्षण की दिशा निर्धारित की जायगी, विशेष प्रशिक्षित अध्यापक बच्चे को विभिन्न तरीकों से सिखाते हैं. बच्चों की क्षमताओं का सर्वाधिक विकास करके उन्हें योग्य बनाया जा सकता है.

जिस प्रकार जिन बच्चों को कोई समस्या नहीं होती उनकी सीखने की क्षमतायें, पढ़ाई की प्रगति एक-सी नहीं होती वैसे ही इन बच्चों को भी उनकी सीमा मे रहकर ही योग्य बनाना पड़ता है. माता-पिता के लिये ज़रूरी है कि सबसे पहले वे स्थिति को स्वीकार करें फिर उस पर विजय पाने की दिशा में कदम बढ़ायें. ■

लोकेन्द्र सिंह

साहित्य और सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय. ब्लॉग 'अपनापंचू' लिखते हैं. समसामयिक विषयों पर आलेख, कविता, कहानी और यात्रा वृत्तांत नामी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. सम्प्रति - पेशे से पत्रकार हैं.

सम्पर्क : गली नम्बर..., किरार कॉलोनी, एस.ए.एफ. रोड, कम्पू, लश्कर, ग्वालियर-४७४००१ ईमेल : lokendra777@gmail.com

खोज-खबर

# डर्टी विज्ञापन

## माल बेचने का अश्लील तरीका

भारत में बाजार यौन फंतासियों के इर्द-गिर्द सिमट रहा है. विज्ञापन जगत मनुष्य की यौनिक संवेदनाओं को कुरेद-कुरेद कर जगा रहा है और पैसा बना रहा है. क्या नैतिक और क्या अनैतिक, इससे उसे कोई वास्ता नहीं. विज्ञापन बाजार बस मनुष्य की मनुष्यता का दोहन कर रहा है. यौन व्यवहार को जीवन की प्राथमिकता और सफलता के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है. टेल्क पाउडर से लेकर सोड़ा पाउडर तक बेचने के लिए नग्नता बेधड़क परोसी जा रही है. ऐसा नहीं है कि विज्ञापन के क्षेत्र में सृजन की कमी है. यहां कई रचनाधर्मी काम कर रहे हैं. नतीजतन, कई बेजोड़ विज्ञापन देखने में आ रहे हैं, जो समाज की बुराई पर सीधी चोट कर रहे हैं, मनुष्य के कलेजे को फड़कने का बंदोबस्त कर रहे हैं. फिर भी, बाजार के चूल्हे पर गंदगी क्यों उबल रही है? समझ से परे है. ऐसे में कई बार साजिश की बू आती है. जैसे भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को पीछे धकेलने का षड्यंत्र रचा जा रहा हो. मनुष्य से उसकी मनुष्यता छीनने की साजिश हो. इंसान को यौन संदर्भ में जानवर बनाने की व्यवस्था हो. जो भी है यह, बेहद घातक है.

> *विज्ञापन जगत मनुष्य की यौनिक संवेदनाओं को कुरेद-कुरेद कर जगा रहा है और पैसा बना रहा है. क्या नैतिक और क्या अनैतिक, इससे उसे कोई वास्ता नहीं. विज्ञापन बाजार बस मनुष्य की मनुष्यता का दोहन कर रहा है.*

संभलना होगा हमें, निगरानी संस्थाओं और नीति निर्माताओं को भी. उत्पादन बेचने के लिए विज्ञापन कंपनियों की मनमानी अधिक दिन तक नहीं चलनी चाहिए. इस मनमानी को रोकने में ही सबकी भलाई.

एक दिन मेरे परिवार का नन्हा सदस्य (तीन वर्ष) अपने बालों को सीधा करते हुए बुदबुदा रहा था. मैंने उससे पूछा क्या कर रहा है? इस पर उसने इतराते हुए कहा- मामा, ऐसा करने से लड़कियां फिदा हो जाएंगी. दरअसल, वह कोमल हृदय का बालक 'बालों में लगाए जाने वाले जैली के विज्ञापन की नकल कर रहा था यानी वह उक्त भौंड़े विज्ञापन से सीख रहा था लड़की पटाने का फंडा. कुछ समय पहले एक जेंट्स अण्डरवियर का विज्ञापन आता था. इसमें अण्डरवियर को धोते वक्त महिला को अतिकामुक होते दिखाया जाता था. इस विज्ञापन पर बड़ा बवाल मचा. मचना भी चाहिए था. बाद में इसका प्रसारण बंद हो गया. लेकिन, ऐसे विज्ञापन तो अब भी बड़ी संख्या में बन रहे हैं और दिख रहे हैं.

बॉडी स्प्रे की खुशबू से मदहोश होकर सारी वर्जनाएं तोड़कर युवक के पीछे युवती का चले आना, बिस्तर से

अंतर्वस्त्रों को उतार फेंकना. कपड़े (जींस) के विज्ञापन में नग्न पुरुषों को दिखाना. यहां भी उक्त कंपनी के जींस पहनने के बाद पुरुषों का संसर्ग पाने के लिए स्त्री को लंपट होते दिखाया गया है. डर्टी विज्ञापन नग्नता ही नहीं परोस रहे बल्कि स्त्री अस्मिता से भी खिलवाड़ कर रहे हैं. यह अधिक चिंता की बात है. डर्टी कैटेगरी के सभी विज्ञापन यही दिखाते हैं कि मनुष्य जाति में स्त्री सबसे ज्यादा कामुक है. काम इच्छाओं पर उसका जोर नहीं, वह इनके आगे हार जाती है. स्त्री की सोच सेक्स से शुरू होकर सेक्स पर ही खत्म हो जाती है. डर्टी विज्ञापन में भारत में शीर्ष पर बैठी स्त्री को दोयम दर्जे पर धकेलने का षड्यंत्र साफ दिखता है.

सामान बेचने के लिए डर्टी विज्ञापन ही एकमात्र सफल फार्मूला नहीं है. निरमा, एमडीएच मसाला, टाटा चाय, बजाज स्कूटर सहित कई उदाहरण हैं. इन कंपनियों के ऐसे कई विज्ञापन हैं जो इतिहास के पृष्ठ पर स्वर्ण अक्षरों में दर्ज हो गए हैं. एक भी डर्टी विज्ञापन उतना बड़ा हिट नहीं हुआ जितना कि ये साफ-सुथरे विज्ञापन रहे. आजकल प्रसारित हो रहा चाय कंपनी का विज्ञापन - देश उबल रहा है. उबलेगा तभी तो आएगा जोश, बढ़ेगी मिठास, बदलेगा देश का रंग... भ्रष्टाचार के खिलाफ देशभर में चल रही मुहिम का हिस्सा लगता है. इस विज्ञापन को देखकर लगता है कि समाज जागरण का काम तो सामान बेचने के साथ भी किया जा सकता है. एक अनुमान के मुताबिक यह विज्ञापन अन्य डर्टी विज्ञापन से कही अधिक हिट है. ग्राहक को उत्पाद की ओर आकर्षित तो करता ही है उसके मन में कुछ करने का जज्बा भी भरता है. इस तरह के विज्ञापन मनुष्य देह के उन्नत शिखर (मस्तिष्क) में स्पंदन करते हैं. यहां स्पष्ट कर हूं कि मेरा ऐसा मानना कतई नहीं है कि आप सामान न बेंचे या हर सामान बेचने के साथ समाज सृजन करें. लेकिन, कम से कम समाज को दूषित तो न करें. हर कोई आगे जाना चाहता है. बाजार

> *सामान बेचने के लिए डर्टी विज्ञापन ही एकमात्र सफल फार्मूला नहीं है. अनेक कंपनियों के ऐसे कई विज्ञापन हैं जो इतिहास के पृष्ठ पर स्वर्ण अक्षरों में दर्ज हो गए हैं.*

में अपनी आवाज सबसे ऊंची रखना चाहता है. लेकिन, इसके लिए समाज को क्या कीमत चुकानी पड़ रही है यह तो सोचना ही पड़ेगा.

समाज जागरण में लगी संस्थाओं के प्रयासों के चलते नागरिक जागरूक हुए हैं, वे अपनी प्रतिक्रिया दर्ज कराने के लिए आगे आने लगे हैं. यही कारण है कि पिछले कुछ सालों में डर्टी विज्ञापनों के खिलाफ काफी शिकायतें हुई हैं. विज्ञापनों पर नजर रखने वाली स्वयंसेवी स्व-नियंत्रित संस्था एडवरटाइजिंग काउंसिल ऑफ इंडिया (एएससीआई) के पास प्रतिदिन डर्टी विज्ञापनों को लेकर हजारों शिकायतें पहुंचती हैं. अफसोस की बात है कि इसके बाद भी इस तरह के विज्ञापनों पर रोक लगना तो दूर इनमें कमी नहीं आई है. हालांकि इस बीच एएससीआई ने सूचना प्रसारण मंत्रालय को इस संबंध में एक प्रस्ताव भेजा है. इस प्रस्ताव में डर्टी विज्ञापनों का प्रसारण रात ११ से सुबह ६ बजे के बीच करने की सिफारिश की गई है. एएससीआई ने बाकायदा ऐसे विज्ञापनों की सूची भी मंत्रालय को भेजी है. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने भी इस मसले को गंभीरता से लिया है. विभाग की मंत्री ने हाल ही में लोकसभा के प्रश्नकाल में बताया था कि विज्ञापनों की नीति निर्धारण के लिए मंत्रियों का एक समूह बनाया गया है. यह समूह जल्द ही इस मसले पर अपनी राय देगा. डर्टी विज्ञापनों का प्रसारण रात ११ से सुबह ६ बजे के बीच करने से समस्या का हल नहीं होगा. क्योंकि आजकल की जीवनशैली ऐसी है कि बच्चे भी देर रात तक टेलीविजन देखते हैं. डर्टी विज्ञापनों को लेकर लोगों में कितना आक्रोश है, उनकी क्या प्रतिक्रियाएं हैं और वे क्या चाहते हैं, मंत्रियों के समूह को यह जरूर जानना चाहिए. मंत्री समूह की राय कुछ ऐसी हो जो लोगों को पसंद आए न कि कंपनियों के मालिकों को. मंत्री समूह को इस दिशा में अपनी राय बनाने से पहले उन तमाम प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करना चाहिए जो एएससीआई पर प्रसारण मंत्रालय तक लोगों ने पहुंचाई हैं.■

मधु अरोड़ा
४ जनवरी १९५८ को जन्म. शिक्षा : एम. ए., सामाजिक विषयों पर लेखन, कई लेखकों के साक्षात्कार प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित. रेडियो पर कई परिचर्चाओं में हिस्सेदारी, मंचन से भी जुड़ी हैं. सम्प्रति - एक सरकारी संस्थान में कार्यरत.
संपर्क : एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स, फिल्म सिटी रोड, मालाड (पूर्व), मुंबई-४०००९७
ईमेल : shagunji435@gmail.com

*बातचीत*

# चर्चित रचनाकार धीरेन्द्र अस्थाना से मधु अरोड़ा की बातचीत

**मधु अरोड़ा : आपने सत्तर के दशक से आज तक एक लंबा साहित्यिक जीवन देखा है, आप तब के और आज के साहित्य में क्या फर्क़ पाते हैं?**

**धीरेन्द्र अस्थाना :** साहित्य में हर दशक के बाद एक पीढ़ी बदल जाती है. इन बदलते हुए हर दस वर्षों में देश, विदेश, उसके समाज, उसकी राजनीति, उसका रहन-सहन और उसकी संवेदनशीलता भी बदल जाती है. तो ज़ाहिर है कि हर आनेवाली पीढ़ी के सरोकार, संवेदनाएं और लेख़न वह नहीं हो सकते जो उसकी पिछली पीढ़ी के हो सकते थे. एक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं. आज जो पीढ़ी कथा-साहित्य में सक्रिय है, उसकी कहानियों में फेसबुक, आर्कुट, जी टाक, टिवटर, एसएमएस, ईमेल आदि आदि शब्द, मुहावरे बहुतायत में हैं. जबकि छठे या सातवें दशक में इन चीज़ों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी. यह तो हुआ तकनीकी बदलाव. संवेदनशीलता और विचारशीलता में भी इसी प्रकार फर्क़ आता है. जहां तक आज के साहित्य की बात है तो मुझे लगता है कि वह शिल्प के स्तर पर ज्यादा चौकन्ना है बनिस्बत संवेदना के. बीस-बाईस कहानियां पढ़ने के बाद कोई एक कहानी ज़ेहन में अटकती है, ठहरती है. जबकि सत्तर के दशक की कहानियों के साथ ऐसा नहीं था.

**आप पेशे से पत्रकार हैं और मूड से कहानीकार, तो पत्रकार और कहानीकार के रूप में किस प्रकार ताल-मेल बिठा पाते हैं?**

पत्रकार और कहानीकार दोनों होने के कुछ लाभ हैं तो कुछ नुकसान भी हैं. पत्रकार जीवन, समय और समाज को लेकर आपके दृष्टिकोण को ज्यादा व्यापक, यथार्थवादी और बहुआयामी बनाता है लेकिन नुकसान यह है कि निरंतर पत्रकारीय लेखन करते रहने से आपको छपने का जो सुख हर समय मिलता रहता है वह आपके रचनाकार के लिये च्थ्ङ्गदद्य ख़्थ्ङ्गद्ध का भी काम करता रहता है. दोनों पक्षों में बेहतर तालमेल ऐसे लेखक को बिठाना ही होता है जो पेशे से पत्रकार होता है.

**आप मुंबई के साहित्यिक परिवेश के बारे में क्या सोचते हैं?**

मुंबई में राष्ट्रीय स्तर के अनेक रचनाकार सक्रिय हैं और हमेशा से सक्रिय रहे हैं लेकिन उनमें से किसी को भी वह मान, सम्मान और दर्जा नहीं मिला जो दिल्ली में रहनेवालों को मिल जाता है. मुंबई का यह सबसे माइनस पाइंट है. इस शहर की दूसरी दिक्कत इसकी दूरियां हैं. लेखक लोग आपस में उस तरह मिल-जुल या बैठ नहीं पाते जैसे दिल्ली, पटना, कोलकता, भोपाल, वाराणसी में आपस में मिल पाते हैं. यहां साहित्यिक पत्रिकाएं भी देखने को नहीं मिलतीं. यहां के लेखक चुपचाप लिखते और छपते हैं. उनके लिखे पर चर्चा भी नहीं होती. तो भी पता नहीं क्या है इस शहर में ऐसा कि जो यहां बस जाता है, वह किसी दूसरे शहर की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखता.

**आज हिन्दी साहित्य जगत में जिस तरह का व्यवसायीकरण और गुटबाजी चल रही है, उस पर क्या कहना चाहेंगे?**

हिन्दी साहित्य जगत में व्यवसायीकरण और गुटबाजी हमेशा से चलती आई है और चलती रहेगी. अच्छे लेखक का रिश्ता इन दोनों से ३६ का होना चाहिये. उसे इस दुनिया के समानान्तर अपनी रचनात्मक दुनिया में जीना- मरना चाहिये क्योंकि अन्त में वही बचेगा जो रचेगा.

**धीरेन्द्र अस्थाना**
२५ दिसंबर १९५६ को मेरठ में जन्म.
प्रकाशित कृतियाँ : कहानी संग्रह - लोग हाशिए पर, आदमी खोर, मुहिम, विचित्र देश की प्रेमकथा, जो मारे जाएँगे, उस रात की गंध, खुल जा सिमसिम, नींद के बाहर. उपन्यास - समय एक शब्द भर नहीं है, हलाहल, गुज़र क्यों नहीं जाता, देश निकाला. साक्षात्कार - रूबरू, अंतर्यात्रा.
संपर्क : dhirendraasthana@yahoo.com

> पुरस्कारों से कोई लेखक छोटा या बड़ा नहीं होता. इतना ज़रूर है कि पुरस्कार आपकी प्रतिभा का तात्कालिक रेखांकन करने में सहायक बनते हैं लेकिन पुरस्कारों को सोच-समझकर स्वीकार करना चाहिये.

**आपके लिये मानवीय सरोकार, आपसी संबंध क्या मायने रखते हैं ?**

इस प्रश्न का सूत्र में यही जवाब है कि मानवीय हुए बिना तो लेखक हुआ ही नहीं जा सकता. यह ज़रूरी नहीं है कि हर संवेदनशील व्यक्ति लेखक हो. लेकिन यह ज़रूरी है कि लेखक संवेदनशील और मानवीय हो. जहां तक मेरी बात है, मुझे लगता है कि मैंने बहुत सारी भौतिक चीजें खोकर रिश्ते कमाये हैं और अपनी इस कमाई पर मुझे गर्व है.

**आपके नजरिये से विवाहेतर संबंधों का क्या औचित्य है ?**

मुझे लगता है कि विवाहेतर संबंध पनपने के दो बड़े कारण ये हैं- एक, जिस साथी के साथ आप रह रहे हैं, उससे मतभेद और मनभेद हो गया है. इस संबंध से निकलकर अग़र किसी विवाहेतर संबंध में जाते हैं, इसका मतलब है कि दूसरे रिश्ते को आप अपने लिये ज्यादा अनुकूल, सुरक्षित और केयरिंग मानने लगे हैं. चाहे विवाहेतर संबंध का और कोई भी तर्क हो तो भी मूलतः यह संबंध ख़ुद को केन्द्र में रखकर देखने, जीने से निर्मित होता है. मेरा इस मामले में नज़रिया एकदम स्पष्ट है कि एक साथ दो रिश्ते नहीं चलने चाहिये. एक रिश्ता छोड़कर दूसरे रिश्ते में पनाह लेने की स्वतंत्रता सबको है लेकिन रिश्तों में ठगी और गड़बड़झाला नहीं होना चाहिये. जो भी हो, एकदम साफ हो. जब समाज और कानून ने हमें अलग हो जाने का अधिकार दिया है तो एक रिश्ते में बने रहकर दूसरे रिश्ते में सेंध लगाने का औचित्य मुझे समझ में नहीं आता.

**तो फिर लिव-इन-रिलेशनशिप क्या है ?**

लिव-इन-रिलेशनशिप एक बिल्कुल अलग कन्सेप्ट है जो हमें महानग़रों की दौड़ती-भागती, कामकाज़ी दुनिया ने दिया है. इस रिलेशनशिप में न तो कोई जिम्मेदारी है और न ही कोई मांग है. दो लोग जब तक एक-दूसरे को पसन्द करते हैं, सहन करते हैं, साथ रहते हैं. जब चीज़ें उलट जाती हैं तो अलग हो जाते हैं. यह एक प्रकार का अनुबंध जैसा है जो देखने में भले ही सुविधाजनक लगे लेकिन मूलतः बेहद संगदिल और बनैला है.

**क्या आप यह मानते हैं कि औरत जब स्पेस चाहती है तो निर्मम हो जाती है ?**

यहां सवाल औरत या मर्द का नहीं है. इस समय समाज और संबंधों में कोई भी व्यक्ति जब अपना स्पेस चाहेगा तो दूसरों को वह निर्मम दिखाई देगा. स्पेस के साथ यह निर्मम जैसा दिखना एक विसंगति की तरह दर्ज़ है. अग़र कोई अपने पेशे (लेखन, पत्रकारिता, चिकित्सा, खेल, अभिनय) को प्राथमिकता देता है तो वह अपने दूसरे दायित्वों के साथ कटौती करेगा ही. यह कटौती ही उसे दूसरों की नज़रों में निर्मम या स्वार्थी बनाती है. औरतों के संदर्भ में यह अवधारणा इसलिये उभरकर आती है कि कुछ दशक पहले तो स्त्री के संदर्भ में स्पेस की तो कोई अवधारणा ही नहीं थी. स्त्री का भी अपना एक स्पेस होता है और होना चाहिये, मैं इस बात का पक्का समर्थक हूं.

**आपकी लेखन-यात्रा में आपकी पत्नी ललिता ने किस प्रकार सहयोग किया ?**

एक लाइन में कहें तो तन-मन-धन से. तन से मेरा तात्पर्य है उसने वे तमाम तकलीफें झेलीं जो एक संघर्षशील लेखक के साथ रहने पर झेलनी होती हैं. मन का अर्थ है कि उसने मेरे लेखक मन को अपना मन दिया. धन से मेरा तात्पर्य है मैं जितना भी कमा सका, उसने उतने में हंसकर गुज़ारा किया. इससे बड़ा सहयोग कोई पत्नी अपने लेखक पति को क्या दे सकती है ?

**आपके लिये सम्मान, पुरस्कार कितने महत्वपूर्ण हैं ?**

पुरस्कारों से कोई लेखक छोटा या बड़ा नहीं होता. यह एक ऐसा शाश्वत ज़वाब है जो आदिकाल से दिया जाता रहा है और अनन्त काल तक दिया जाता रहेगा. फिर भी न पुरस्कार कम होते हैं और न पुरस्कारों को प्राइज़ करने की इच्छा. इतना ज़रूर है कि पुरस्कार आपकी प्रतिभा का तात्कालिक रेखांकन करने में सहायक बनते हैं लेकिन पुरस्कारों को सोच-समझकर स्वीकार करना चाहिये. जिस पुरस्कार से कोई ग़हरा सम्मान, भावना या अकादमिक ऊँचाई न जुड़ी हो, उसे टाल देना चाहिये.

**प्रवासी साहित्य को आप किस तरह परिभाषित करते हैं ?**

मेरे संदर्भ में यह सवाल मौज़ूं नहीं है क्योंकि मैंने बहुत कम प्रवासी साहित्य का अध्ययन किया है. जो कभी-कभार छुट-पुट कहानियां पढ़ी हैं उनमें संभावनाएं जैसी तो दिखती हैं लेकिन वे उस अटारी पर नहीं हैं जहां साहित्य रहता है. मुझे ऐसा भी लगता है कि प्रवासी साहित्य को लेकर कई सारी ग़लत धारणाएं भी सक्रिय हैं. अभी तक यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि प्रवासी साहित्य किसे कहा जायेगा ? हिन्दी के उन लेखकों का लेखन जो विदेशों में बस गये हैं या उन लेखकों का लेखन जो विदेशों में ही जन्मे, पले और बढ़े हैं और हिन्दी में लिखते हैं. मसलन, अभिमन्यु अनत शबनम मेरी नजर में मारिशस के लेखक हैं जबकि कुछ लोग उनके लेखन को प्रवासी मानते हैं.

> आपका एक मित्र तो होना ही चाहिये, अग़र आपके दो मित्र हैं तो आप भाग्यशाली हैं. तीन मित्र तो हो ही नहीं सकते.

ठीक इसी तरह जापान में रहने वाले लक्ष्मीधर मालवीय हिन्दी के लेखक हैं या कि प्रवासी लेखक. अच्छा हो कि कोई विद्वान इस गड़बड़झाले को ठीक करे.

**आपके उपन्यासों को पढ़कर यह तो पता चलता है कि आपके मित्र आपकी कसौटी पर ख़रे नहीं उतरे, क्या आप अपने मित्रों की कसौटी पर ख़रे उतरे हैं?**

आप मित्रों और परिचितों में कन्फ्यूज़न पैदा कर रही हैं. सारे ही परिचित मित्र भी हों, यह ज़रूरी नहीं है. पहले तो मैं मित्र की एक लोकप्रिय परिभाषा देना चाहूंगा जो मोहन राकेश ने दी थी. उन्होंने कहा था, 'आपका एक मित्र तो होना ही चाहिये, अग़र आपके दो मित्र हैं तो आप भाग्यशाली हैं. तीन मित्र तो हो ही नहीं सकते.' मोहन राकेश ने यह बात बातों-बातों में कही थी लेकिन इस जुमले में ग़हरा अर्थ छिपा है. मेरे जिस उपन्यास के बारे में आप यह कह रही हैं कि मेरे मित्र मेरी कसौटी पर ख़रे नहीं उतरे, वह एक उपन्यास है, 'गुज़र क्यों नहीं जाता?' जिसका बैकड्राप दिल्ली का वह समय है जब मैं बुरा वक्त झेल रहा था. उसमें जो लोग रेखांकित किये गये हैं, वे मित्र नहीं हैं बल्कि विभिन्न चरित्र हैं. असल में दोस्ती और मोहब्बत दोनों ही स्थितियों में यह कहावत लागू होती है, 'एक आग़ का दरिया है और डूबकर जाना है.' सिर्फ़ मेरे ही नहीं, किसी के भी जीवन में हर वह परिचित दूर छूट जाता है जो दोस्ती में उतर नहीं पाता. मेरी नज़रों में मेरे जो मित्र हैं, उनकी कसौटी पर मैं ख़रा हूं.

**अन्तिम सवाल- केवल कोई एक पंक्ति ऐसी बताईये जो आपको प्रिय भी हो और कुछ हद तक आपके व्यक्तित्व को परिभाषित भी करती हो.**

'हाय हाय, मैंने उन्हें देख लिया नंगा
अब मुझको इसकी सज़ा मिलेगी'.

- मुक्तिबोध

■

60 MILLION
CHILDREN IN INDIA
have no means to go to school

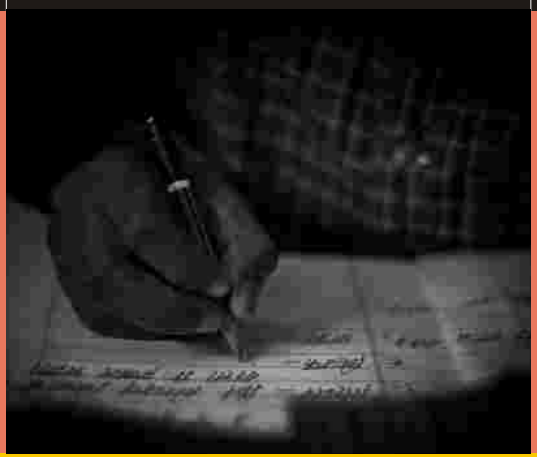

Contribute just Rs. 2750*
and send one child to school
for a whole year

Central & General Query
info@smilefoundationindia.org
http://www.smilefoundationindia.org/contactus.htm

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

राजकिशोर

राजनीति में रुचि थी, लेकिन पत्रकारिता और साहित्य में आ गये. अब फिर राजनीति में लौटना चाहते हैं, लेकिन परंपरागत राजनीति में नहीं. सोचते हैं कि क्या मार्क्स की राजनीति गांधी की शैली में नहीं की जा सकती. एक व्यापक आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा रखते हैं. उसके लिए साथियों की तलाश है. आजकल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ फ़ेलो हैं. साथ-साथ लेखन और पत्रकारिता भी जारी है. रविवार, परिवर्तन और नवभारत टाइम्स में वरिष्ठ सहायक सम्पादक के तौर पर काम किया. कई चर्चित पुस्तकों के लेखक. ताजा कृति : उपन्यास 'तुम्हारा सुख'.

सम्पर्क : ५३, एक्सप्रेस अपार्टमेंटस, मयूर कुंज, दिल्ली-११००९६ ईमेल : truthonly@gmail.com

# अज्ञेय और शीत युद्ध

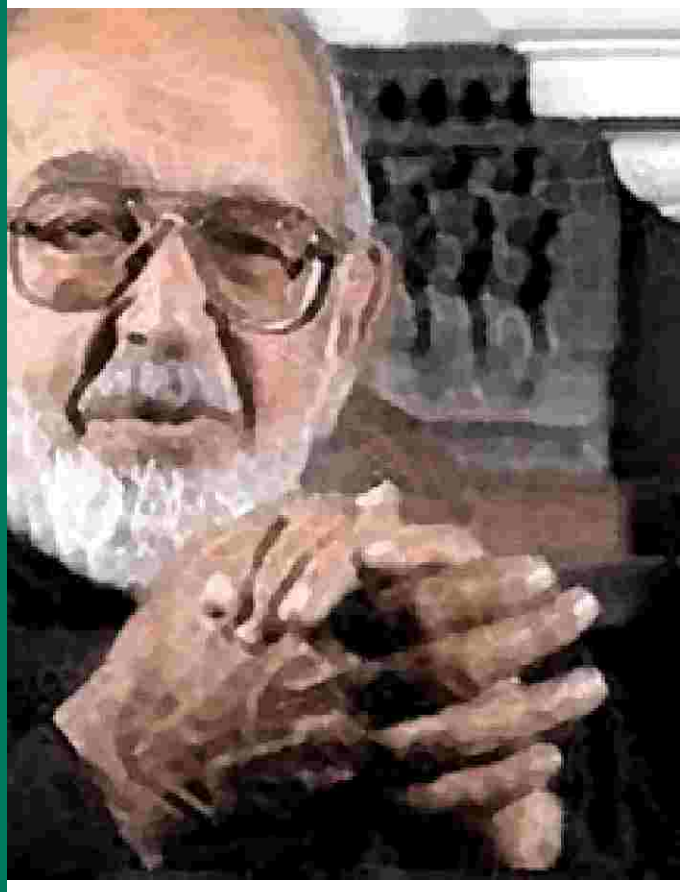

अज्ञेय हिंदी के एक मात्र नहीं तो अकेले प्रमुख लेखक थे जो शीत युद्ध का शिकार हुए. शीत युद्ध भी आखिर युद्ध ही था. युद्ध के संदर्भ में माना जाता है कि आप मित्र हैं या शत्रु. बीच की कोई जगह नहीं हो सकती. यही पिछड़ी हुई मान्यता अभी भी राज कर रही है. मेरे खयाल से, किसी युद्ध में जब सभ्य लोग शामिल होते हैं (जाहिर है, वे खुद शामिल नहीं होते, इसके लिए उन्हें बाध्य कर दिया जाता है), तो वे युद्ध की परिभाषा ही बदल देते हैं. उनके लिए कोई शत्रु नहीं होता. तब भी नहीं जब कोई उनका नुकसान कर रहा हो. सभ्य आदमी अपने नुकसान को रोकने की कोशिश करता है, लेकिन इसके लिए वह किसी और का नुकसान नहीं कर सकता. यों कहिए कि उससे कण मात्र भी ज्यादा नुकसान नहीं कर सकता जितना अपना नुकसान रोकने के लिए अपरिहार्य हो. इस नीति के मूल में सभी के प्रति मैत्री भाव है, जिसके बिना सभ्य होने की कल्पना ही नहीं की जा सकती. अमेरिका और सोवियत संघ के बीच जो शीत युद्ध चला था, उसका कम से एक पक्ष अपने सभ्य होने का परिचय दे सकता था. अमेरिका से भी इस तरह की माँग की जा सकती थी, लेकिन उम्मीद नहीं, क्योंकि वह मानता है कि सुखी होने के लिए निजी संपत्ति की संस्था का बने रहना जरूरी है. इस परिभाषा की कोई संगति संपूर्ण विश्व को न्यायपूर्ण और सुंदर बनाने की इच्छा के साथ नहीं है, यह विचार और व्यवहार, दोनों स्तरों पर साबित हो चुका है. लेकिन सोवियत संघ एक नई किस्म का राज्य था. वह कम्युनिज्म के महान आदर्शों से जुड़ा हुआ था. यह विडंबना ही है कि युद्ध के संदर्भ में उसका आचरण युद्ध की पुरानी और ध्वंसात्मक धारणाओं का अनुवाद मात्र था. दुनिया भर के लेखकों को इसकी कीमत चुकानी पड़ी. भारत में यह कीमत अज्ञेय से वसूल की गई.

अज्ञेय मानवेंद्र नाथ राय की विचारधारा से प्रभावित थे. ऐसा कहा जाता है. यह प्रभाव था या नहीं और था तो ठीक-ठीक कितना था, यह स्पष्ट नहीं है. बेशक अज्ञेय के लेखन में मानववाद के बहुत-से पहलू दिखाई देते हैं. लेकिन आर्थिक तथा अन्य प्रकार की विषमता और उससे पैदा होनेवाली कुरूपताओं की समस्या ने शायद उन्हें बहुत आकुल नहीं किया. कम से कम, यह उनका कोई मुख्य सरोकार नहीं था.

> *साहित्य और कला की दुनिया रहस्यमयी है और आगे भी ऐसी ही रहेगी, क्योंकि जिसे हम रचना कहते हैं, वह सैकड़ों-हजारों क्रिया-प्रतिक्रियाओं का अंत-उत्पाद होती है. इन क्रिया-प्रतिक्रियाओं के घटना स्थल यानी मानव मन की बनावट पर स्वयं उस मन के स्वामी का बहुत अधिकार नहीं होता.*

गरीबी, अभाव, शोषण, वंचना आदि के चित्र उन्होंने भी उकेरे हैं (जिन्हें दबा कर रखने की कोशिश की गई है - कुछ जानबूझ कर और ज्यादातर अज्ञानवश), लेकिन इस सरोकार का मुख्य होना लेखक होने की एक मात्र कसौटी नहीं है. भारत जैसे समाज में, जहाँ विषमता इतनी ज्यादा और सीधे आँखों में चुभनेवाली दैनिक उपस्थिति है कि कोई चाहे भी तो पूरी तरह मानवीय होकर नहीं जी सकता, कोई लेखक इस सचाई से कैसे निरपेक्ष हो सकता है? फिर भी ऐसा होता है, इसमें कोई शक नहीं है. हिंदी के ही बहुत-से लेखक, मृत भी और जीवित भी, इसके ठोस उदाहरण हैं.

लेकिन सिर्फ ऐसा होने से हम यह नहीं कह सकते कि वे लेखक ही नहीं हैं. साहित्य और कला की दुनिया रहस्यमयी है और आगे भी ऐसी ही रहेगी, क्योंकि जिसे हम रचना कहते हैं, वह सैकड़ों-हजारों क्रिया-प्रतिक्रियाओं का अंत-उत्पाद होती है. इन क्रिया-प्रतिक्रियाओं के घटना स्थल यानी मानव मन की बनावट पर स्वयं उस मन के स्वामी का बहुत अधिकार नहीं होता. उदाहरण के लिए, मैं लिखना चाहता था 'क' मगर मेरी उँगलियों ने जो लिखा, वह 'ख' था. क्या मेरी उँगलियाँ मेरे बस में नहीं हैं? मैं खुद अपने बस में नहीं हूँ? यह समस्या उन लेखकों को भी कुछ कम परेशान नहीं करती जो सचेत रूप से समाजवादी या कम्युनिस्ट हैं. ऐसे सभी मामलों में कहा यही जाना चाहिए कि हाड़-माँस के आदमी के लिए अंतरविरोधों से मुक्त रह पाना मुश्किल है. मुश्किल? नहीं, असंभव है.

अज्ञेय कैसे लेखक थे, यह अभी तक तय नहीं हो पाया है. वे ऐसे लेखक हैं जो हिंदी जगत में (हिंदी का लेखक जगत जिसका एक बहुत लघु हिस्सा है) जितना ज्यादा सम्मानित हुए, जितनी श्रद्धा का पात्र बने, उतना समझे नहीं गए. समझने की कोशिश हुई और वे अभेद्य साबित हुए, यह झूठ है. जहाँ तक अज्ञेय के साहित्य को समझने का सवाल है, इसकी तो कोशिश भी नहीं हुई. हिंदी के विद्यापीठों में अज्ञेय को पढ़ाया जाता रहा, आज भी पढ़ाया जाता है, पर विद्यापीठों का व्यवहार विश्लेषण के बजाय व्याख्या के प्रति ज्यादा समर्पित होता है, यह कौन नहीं जानता? जो थोड़ा अधिक जानते हैं, उनका दावा है कि ज्ञान की इन सरकारी मंडियों में व्याख्या भी उतनी ही पर्याप्त मानी जाती है जितने से छात्र एकदम ठगे गए महसूस न करते हों.

इस स्थिति का एक बड़ा कारण शीत युद्ध की मानसिकता है. हमारे कम्युनिस्ट लेखकों और आलोचकों ने सिर्फ आरोप लगाने से हट कर अगर अज्ञेय के लेखन का कुछ विश्लेषण किया होता, तो हिंदी के अध्यापक समुदाय को सुविधा हो जाती. शीत युद्ध के परिणामस्वरूप अज्ञेय को शत्रु खेमे में डाल दिया गया. यह कठोर फैसला सुनाने के पहले न्यूनतम साहित्यिक साक्ष्य प्रस्तुत करना भी जरूरी नहीं लगा, इसके लिए उनके जीवन के दो-तीन प्रसंगों का उल्लेख काफी मान लिया गया. यह क्रांतिधर्मिता कुछ समझदार हलकों में आज भी जारी है, यह हमारे साहित्य समय का पाँचवाँ आश्चर्य है.

> *अज्ञेय के साहित्य के प्रति हिंदी के लेखक जमात का रुख बदल रहा है, लेकिन पुरानी हिचकिचाहटें जाना नहीं चाहतीं. यह भी सच है कि अज्ञेय-अज्ञेय करने से कोई अज्ञेय का साहित्यिक उत्तराधिकारी नहीं हो जाता. हमारे अपने पुण्य और हमारे पाप हमारे ही साथ रहेंगे.*

अज्ञेय को फासिस्ट, अमेरिका का पिट्ठू और जनतंत्र का दुश्मन मान लेते हैं, तब भी, सवाल यह है कि वे लेखक थे या नहीं? सवाल यह भी है कि अज्ञेय के लेखन पर उनकी कथित राजनीतिक (कु)प्रतिबद्धताओं का असर क्या पड़ा है. पश्चिम में ऐसे लेखकों का भी, विस्तार से और गहरा अध्ययन होता है. नीत्से प्रतिक्रियावादी विचारक के रूप में मशहूर हैं. लेकिन पिछले पचहत्तर वर्षों में उन्हें प्लेटो से कम उद्धृत नहीं किया गया है. अगर पश्चिम के किसी विद्वान ने नीत्से को नहीं पढ़ा है, तो वह साहित्यिक समाज में उठने-बैठने के काबिल नहीं माना जाता. जॉर्ज ऑर्वेल कम्युनिस्ट व्यवस्था के कटु आलोचक थे, फिर भी अंग्रेजी ने उन्हें जाति से बहिष्कृत नहीं किया. बल्कि इसकी वजह से उनकी इज्जत बढ़ी. हमारे कम्युनिस्ट मित्र अगर 'एनिमल फार्म' को महीने में एक बार पढ़ लिया करें, तो उनका, हिंदी और हमारे समाज का बहुत भला हो. फिर हिंदी में ही ऐसा क्यों हुआ? हिंदी में ही ऐसा क्यों होता है? 'घृणा के प्रचारक प्रेमचंद' जैसी रचना हिंदी के अलावा और किस भाषा में लिखी गई है?

शीत युद्ध का गरम दौर खतम हो चुका है. पर उसकी तासीर गई नहीं है. वातावरण में कुछ परिवर्तन आने से अज्ञेय के साहित्य के प्रति हिंदी के लेखक जमात का रुख बदल रहा है, लेकिन पुरानी हिचकिचाहटें जाना नहीं चाहतीं. यह भी सच है कि अज्ञेय-अज्ञेय करने से कोई अज्ञेय का साहित्यिक उत्तराधिकारी नहीं हो जाता. हमारे अपने पुण्य और हमारे पाप हमारे ही साथ रहेंगे. यह जिज्ञासा ज्यादा अहम है कि क्या आज हम एक ऐसे नवयुग की कल्पना कर सकते हैं जो साहित्य जगत में वीटो, सुरक्षा परिषद, नाटो, वारसा पैक्ट आदि को संग्रहालय की वस्तु बनाने और लोकतंत्र को उसकी समस्त मर्यादाओं और सम्मान के साथ स्थापित करने के लिए हम सब को आमंत्रित करे? राजनीति और समाज में लोकतंत्र का हाल हम देख ही रहे हैं. क्या साहित्य में भी लोकतंत्र एक दिवास्वप्न बना रहेगा? ■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

# शाश्वतं

ईश्वर की जिस दूसरी विशेषता में तुलसी की प्रणति है वह है 'शाश्वतं' की विशेषता. ईश्वर समय नहीं है, इटर्निटी है, समयांत शून्य है. महाकाल की अवधारणा ही यह है कि वह काल को अतिक्रान्त करता है. तो वे राम जिन्हें तुलसी पूज रहे हैं किसी अवधि में सीमित राम नहीं हैं. वे शाश्वत हैं. उन्हें इतिहास में नहीं बाँधा जा सकता. उनकी सदैवता और अक्षुण्णता को पहचानना ही रावण-दृष्टि से मुक्ति है. दो इटर्निटी हैं : Parte Ante जिसका अर्थ है : an infinite extent of time before the present और parte post यानी an infinite extent of time after the present. राम दोनों ही अनंतों में हैं. लेकिन रावण उन्हें उनकी सनातनता और अव्ययता में देख ही नहीं पाता. विभीषण उसे सुन्दरकांड में सावधान भी करते हैं : तात राम नहिं नर भूपाला/भुवनेस्वर कालहु कर काला. कि राम को समय के किसी बिन्दु पर स्थित नश्वर मनुष्य की तरह देखने की भूल न करें बल्कि उनको उनकी समयांत शून्यता में देखें. मनोभौतिकी में एक काल त्रुटि होती है, रावण भी एक काल त्रुटि कर रहा है और विभीषण की चेतावनी भी उसी के प्रति है. ईश्वर समय का आलिंगन करे तो यह नहीं समझ लेना कि वह समय के पार नहीं है. ईश्वर के अज्ञात तट हैं, अज्ञात क्षितिज. शाश्वतता एक सकारात्मक शब्द है लेकिन उसकी दो नकारात्मक व्याख्याएँ हैं. एक, जिसका कोई आरम्भ नहीं है. दो, जिसका कोई अंत नहीं है. लेकिन जिसकी चमक और ताक़त सबमें निहित है, जो पार्थिव चीज़ों के पारदर्शी घूँघट से भी झाँक पड़ती है उसे तो समझें. अमरता की सबसे अच्छी परिभाषा एक गूँगे-बहरे व्यक्ति ने दी थी : It is the lifetime of the Almighty. यह ईश्वर का जीवनकाल है. तो ईश्वर समय में नहीं है. वह तो समय का लेखक है. ईश्वर ने समय को रचा लेकिन काल ईश्वर के अपने होने या सत्व का अंश नहीं

> *ईश्वर समय नहीं है, इटर्निटी है, समयांत शून्य है. महाकाल की अवधारणा ही यह है कि वह काल को अतिक्रान्त करता है. तो वे राम जिन्हें तुलसी पूज रहे हैं किसी अवधि में सीमित राम नहीं हैं. वे शाश्वत हैं.*

है. ईश्वर ने जिस तरह यह स्पेस रचा होगा, उसी तरह उसने समय और पदार्थ को भी रचा होगा. लेकिन ईश्वर का स्वयं का कोई ड्यूरेशन नहीं है, वह निरवधि है. ईश्वर न तो काल से बाधित है, न इससे परिमित. रावण ईश्वरत्व को तो देख नहीं पाता क्योंकि उसकी गति वर्तमान में ही है. उसकी पहुँच (एक्सेस) न तो अतीत में है, न भविष्य में. राम पदार्थ नहीं कि वे समय में हों. बाइबल का सातवां छंद (Revelation) कहता है कि जब सातवाँ देवदूत बिगुल बजाएगा, ईश्वर का रहस्य खत्म हो जाएगा. लेकिन तुलसी के राम 'व्यापक अजित अनादि अनंता' हैं. उनकी कोई आरम्भिकी (जिनेसिस) नहीं है, तुलसी नहीं कहते कि आरम्भ में सिर्फ़ शब्द था. (इन द बिगिनिंग वास द वर्ड). वे तो उन्हें अनादि कहते हैं, शाश्वत. जिनेसिस और बिगिनिंग जैसी चीज़ें ईश्वर की व्याख्या नहीं कर सकतीं. तुलसी यह नहीं कह रहे कि राम रावण से अधिक बूढ़े हैं, Aged हैं, वे कह रहे हैं कि राम एजलेस हैं. 'कालहु कर काला' है. ओल्ड टेस्टामेंट में

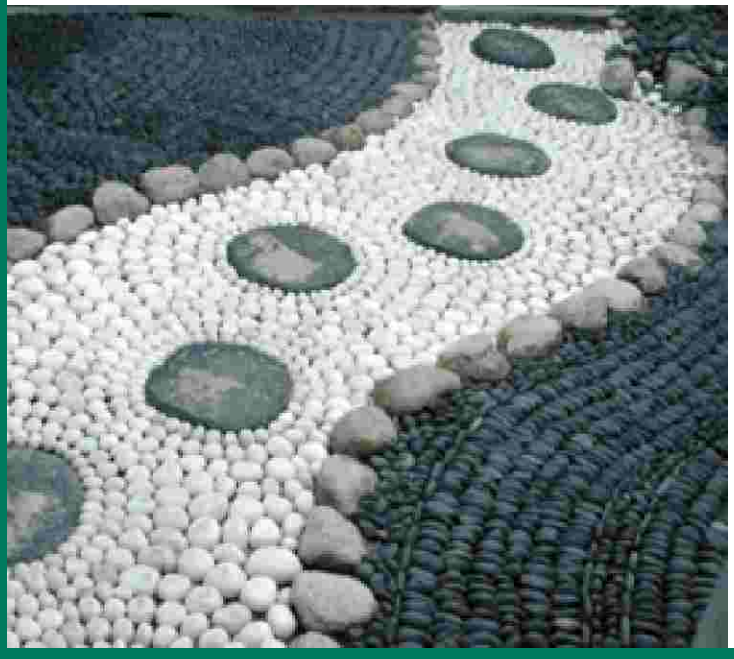

जोशुआ के 'लम्बे दिन' का उल्लेख है- जब सूर्य एक दिन के लिए रुक गया था- ताकि जोशुआ अमोरिट्स के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण युद्ध पूरा कर सके. ईश्वर ने उसी समय अपवादात्मक रूप से अत्यन्त भारी तड़ित वर्षा की भी व्यवस्था की. यानी ईश्वर जो पृथ्वी का अपने अक्ष पर घूमना रोक सकता है, काल की गति उस पर निर्भर है. ईश्वर अतिप्राकृत शक्तियों की मदद से अपनी इच्छा पूरी कर सकता है. समय के सामान्य प्रवाह में किसी नैतिक कारण से ईश्वर की दखलंदाज़ी की चर्चा पश्चिमी पौराणिकी में भरी पड़ी है. ७१४ ई.पू. राजा हेजेकिआ की उम्र ईश्वर ने १५ साल और बढ़ा दी. कथा कहती है ईश्वर ने कालयंत्र (सन डायल) को दस क़दम पीछे जाने को कहा. क्या उसने पृथ्वी के अपने अक्ष पर परिभ्रमण में कुछ डगमगाहट (Wobble) पैदा की? क्या उससे सभी को प्रभावित नहीं होना था? कथा में ऐसे वैज्ञानिक प्रश्न अनुत्तरित हैं. फिर भी यह ईश्वर की शाश्वतता ही है जिसके कारण विश्व भर की पौराणिकी में समय और ईश्वर के अंतर्सम्बन्धों का अध्ययन एक दिलचस्प शोध विषय की तरह मौजूद हैं.

ये अन्तर्सम्बन्ध हर जगह एक रूप नहीं हैं. बाइबल में सोलोमन कहता है :- He has made everything beautiful in its time, also he has put eternity into man's mind. So that he cannot find out what God has done from the beginning to the end. (Ecclesiastes 3:10-11)

यहां कहा ये जा रहा है कि इटर्निटी मनुष्य के दिमाग़ में इसलिए रखी गई क्योंकि ईश्वर ने आदि से अंत तक क्या किया, इसका उसे पता न चल सके. लेकिन तुलसी के राम शाश्वत इसलिए नहीं कि वे मनुष्य के दिमाग़ की उपज हों, कि उससे आदि और अंत का पता न चले बल्कि वे अनादि हैं, नेति नेति हैं. आदि और अन्त का पता न चलना एक बात है

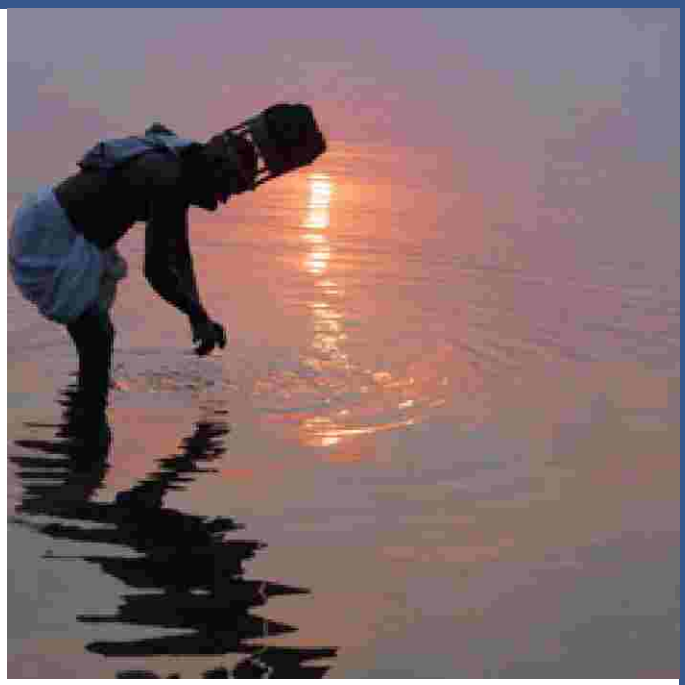

और उनका न होना अलग बात. ईश्वर के सामने हमारी ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक असमर्थता मात्र की बात नहीं है. सिर्फ़ यह नहीं है कि हम व्यतीत की पुनर्रचना सही-सही नहीं कर सकते. रोमिला थापर, रामशरण शर्मा, सतीशचंद्र आदि के तमाम दावों के बावजूद. कि भविष्य की घटनाओं को यथार्थ नैश्चित्य के साथ पूर्वानुमानित नहीं कर सकते कि कल्कि अवतार कब होगा, कि क्राइस्ट कब लौटेंगे, बल्कि यह भी कि आदि और अंत के दो छोरों के बीच समय का कोई रैखिक प्रवाह नहीं है. मनुष्य अपनी भ्रमित बुद्धि के चलते इस एकायामी रैखिक प्रवाह में फँसा हो सकता है और ईश्वर के सामने हमारी दृष्टि (विज़न) के संकुचन के कारण आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य से हमारा विचलन भी हो सकता है. जब हम समय की प्रगति को एक रैखिक तरह से देखते हैं तो हमें लगता है कि यदि इसी को पर्याप्त पीछे देख लिया जाए तो कोई न कोई प्रथम कारण ("causa prima") मिल जाएगा. कोई बड़ा धमाका (बिग बैंग). कोई ईश्वर. शब्द. या कोई प्रथम चीज़. लेकिन यदि समय रैखिक न होकर वर्तुल हो, चक्रीय हो, स्फेरिकल हो तो? पुराने टेस्टामेंट में 'समय' का कोई अमूर्त प्रयोग नहीं है. यह बात रोन्नी लिटिलजॉन ने अपने निबंध 'काल की हिब्रू अवधारणा' (द हिब्रू कांसेप्ट ऑफ़ टाइम) में नोट की. उसने कहा कि हिब्रुओं के लिए समय एक घटना है. ग्रीक लोगों की तरह उन्होंने इटर्निटी की व्याख्या समयहीनता (टाइमलेसनेस) में नहीं की है. उनके लिए जीवन ही समय है. To live was time. ऐसा कोई समय नहीं जब जीवन-घटनाएं (life events) न हों और ऐसी कोई जीवन-घटना नहीं जब समय न हो. किन्तु आगस्टीन ऑफ हिप्पो ने कहा कि समय सिर्फ़ सृजित संसार में ही अस्तित्व रख सकता है तो ईश्वर समय के बाहर (outside of time) होता है. ईश्वर स्पेस और समय दोनों से स्वतंत्र है क्योंकि ये दोनों संसार के गुण हैं.

> *आदि और अंत के दो छोरों के बीच समय का कोई रैखिक प्रवाह नहीं है. मनुष्य अपनी भ्रमित बुद्धि के चलते इस एकायामी रैखिक प्रवाह में फँसा हो सकता है और ईश्वर के सामने हमारी दृष्टि (विज़न) के संकुचन के कारण आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य से हमारा विचलन भी हो सकता है.*

लेकिन शाश्वतं के संबंध में घटनापरक हिब्रू या अमूर्त्तनवादी ग्रीकों से भिन्न तुलसी के यहाँ, उस बहाने भारतीय दर्शन में भी, इसकी व्याख्या ऐसे एकायामी तरीक़े से नहीं की जाती है. संसार और ईश्वर को अलग-अलग मानकर यहां नहीं चला जाता. ईश्वर होगा तो ईश्वर के प्रभाव (effects) क्यों न होंगे? कि ईश्वर का भी विकास होगा? प्रत्येक ऐसे पल जब भगवान का अस्तित्व है; उसके प्रभाव भी अस्तित्ववान रह सकते हैं और इस प्रकार भगवान को काल के भीतर अपने प्रभावों से पूर्व उपस्थित होने की ज़रूरत नहीं है. इसलिए तुलसी के शाश्वतं की बात दूसरी है. तुलसी का इस शाश्वतं के प्रति प्रणाम पार्थिव राम के विरोध में नहीं हैं. वे राम के 'मनुष्यत्व' में ईश्वरत्व को देखते हैं. वे नीत्शे की तरह भगवान को मृत नहीं मानते. वे नहीं कहते कि 'भगवान भी सड़ता (decompose) है. भगवान मर गया. भगवान मृत ही रहेगा और हमने उसकी हत्या की है.' हालाँकि नीत्शे की इस मृत्यु घोषणा की बहुत ही अर्थवती उपयोगिताएँ हैं और इस बात की भी कि ईश्वर की मृत्यु की ज़िम्मेदारी हम पर है. डी. क्यूपिट की पुस्तकें 'भगवान की आज्ञा लेकर छूटना' (Taking Leave of God) और 'सिर्फ़ मानवीय' (Only Human) भी कुछ इसी तर्ज़ पर हैं. ध्यान रखें कि तुलसी के राम 'सिर्फ़ मानवीय' हैं, हालाँकि वाल्मीकि के राम उनसे भी ज़्यादा मानवीय हैं. फिर भी तुलसी का भगवान पृथ्वी पर उतरता है और राक्षसी शक्तियों को उसके विरुद्ध जीत का भरोसा भी है. नर वानर केहि लेखे मांहि. लेकिन राम के आंतरिक ऐश्वर्य की गणना न कर पाना ही रावण की असफलता है. अपने शत्रु को कम आँकना वैसे भी बेवकूफ़ी है. तुलसी के राम यदि नंगे पैर हैं, यदि वे आम आदमी की तरह बोलते दिखते हैं तो क्या उनके असाधारणत्व से आँख हटा लेना योग्य होगा? यह ग़लती अक्सर होती है. यदि हम ईश्वर से बात करते हैं तो वह प्रार्थना है. यदि ईश्वर हमसे बात करे तो वह पागलपन है, मनोरोग है, उन्माद है. राम का तापस होना या मानवीय होना रावण के लिए एक ग़लत रणनीति अपनाने का कारण बन जाता है. शाश्वतं का बोध होने पर वह थोड़ा गंभीर भी होता, लेकिन नररूप राम को देखकर वह भरमा जाता है. वह नहीं जानता कि ईश्वर की शाश्वतता सिस्टर्न के पानी जैसी नहीं है कि उसी जल का पुनर्चक्रण हो, बल्कि सदा प्रवाही निर्झर जैसी है जिसका पानी बासा और गंदला नहीं होता, सदा ताज़ा होता है. रावण को भी विकृत अर्थों में ही सही प्यास उसी शाश्वतं की है. उसके वरदान की अभीप्सा में वही बात है : हम काहू के मरहि न मारे. लेकिन यह सिस्टर्न वाली शाश्वतता है जो ईश्वर की तरह सुन्दर शाश्वतता नहीं है : क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति....' वाली. इसलिए यह अपने अपवाद भी छोड़ती है : ' हम काहू के मरहि न मारे/वानर मनुज जात दुइ बारे.' क्योंकि यह तो उन अपवादों को अपना आहार मानती है : वानर मनुज अहार हमारा'. उसी 'आहार' से रावण की हार तय हो जाती है : राज़ खुल जाने का ख़तरा नहीं रहने देता/वो किसी को पसे पर्दा नहीं रहने देता/चप्पे-चप्पे में हमेशा से वही रहता है/जो किसी को भी हमेशा नहीं रहने देता.

> *ईश्वर की शाश्वतता सिस्टर्न के पानी जैसी नहीं है कि उसी जल का पुनर्चक्रण हो, बल्कि सदा प्रवाही निर्झर जैसी है जिसका पानी बासा और गंदला नहीं होता, सदा ताज़ा होता है.*

शाश्वतं की व्याख्या करते हुए तुलसी ने अन्यत्र लिखा है : जो तिहुँ काल एकरस अहई (१/३४१/८). वे अक्षर, अनवरत, अविरल, चिरंतन, ध्रुव, नित्य, अविराम, सनातन, निरंतर और अविरत ईश्वर को सुन्दरकांड के आरम्भ में ही प्रणाम करते हैं. यह वह ईश्वर है जिसका कोई उत्तराधिकारी नहीं है. प्राणी के बारे में कहा जा सकता है कि वह था और होगा, ईश्वर तो सदा 'बस' है. He is not in his essence this day what he was not before, or will be the next day and year what he is not now. All other things pass from one state to another, from their original to their eclipse and destruction but god possesses his being in one in- divisible point, having neither beginning, end, nor middle. वह तो शाश्वतं से शाश्वतं तक है (He is blessed from everlasting to everlasting" - 12/13). भगवान के मूड स्विंग्स नहीं होते. वह सच्चिदानंद है. पर 'खुली आस्तिकता' के आन्दोलन में ईश्वर के समयत्व (temporality) को लेकर बहुत सी बहसें हुई हैं. यह कहा गया कि यदि ईश्वर की शाश्वतता समयहीन है तो फिर वह हमारे सामयिक संसार से कैसे सम्बद्ध हो सकता है? तब वह ऐसा ईश्वर कैसे हो सकता है जो समय के प्रवाह को अनुभूत करे और भविष्य का किसी ऐसी चीज़ की तरह सामना करे जो पूर्णतः स्थिर (Completely settled) नहीं हुआ हो. क्लार्क पिनॉक का कहना है कि कालहीन प्राणी न तो योजना बना सकता है और न उसे क्रियान्वित कर

सकता है. (Timeless being could not make plans and carry them out) (Systematic Theology : P. 120)

लेकिन भारतीय पौराणिकी में अवतार का अर्थ ही यही है कि वह न केवल पृथ्वी पर उतरता है बल्कि समय पर उतरता है. वह समय के बदलावों के बीच जीता और हमसे अंतःक्रिया (interact) करता है. वह समय का समय है, सुप्रीम समय लेकिन पश्चिमी दर्शन के भगवान की तरह हमारा भगवान समयहीन नहीं है. यदि वह धरती (स्पेस) पर अवतीर्ण होता है तो वह समय में भी साक्षात्कृत होता है क्योंकि समय और आकाश अलग-अलग नहीं हैं. वे सह सापेक्ष हैं, बिना देश के समय नहीं हो सकता. इसलिए अवतार के समकालीन लोग हो सकते हैं, ब्रह्म के समकालीन नहीं. राम के समकालीन रावण है, लेकिन रावण ब्रह्म के समकालीन नहीं है. इसलिए ब्रह्म जब राम के रूप में अवतार लेता है तो वह योजना भी बनाता है, समय सीमाएँ भी रचता है और उन्हें क्रियान्वित भी करता है. जो लोग अवतार को इतिहास न बताकर काल्पनिक पात्र बताते हैं, वे अवतार के समय में उतरने के बुनियादी फ़र्क़ की उपेक्षा करते हैं.

बाइबिल में कहा गया कि पाप की उजरत मृत्यु है. लेकिन यदि ऐसा है तो पुण्यात्मा को, 'अनघं' को 'शाश्वतं' होना ही चाहिए. अनघं का स्वभाव ही है शाश्वतता. जो सत्ता निश्चय ही अजात और अमृत है वह मरणशीलता को कैसे प्राप्त हो सकती है? मरण रहित वस्तु कभी मरणशील नहीं हो सकती क्योंकि किसी के स्वभाव का विपर्यय नहीं होने वालाः अजाता ह्यमृतो धर्मो मर्त्यनां कथमेश्यति. न भवत्यमृतं मर्त्य न मर्त्यमृमतं तथा. प्रकृतेरन्यथाभावो न कथंचिद्भविष्यति.. (मांडूक्योपनिषद ६.७)

तुलसी के राम यदि 'शाश्वत' हैं तो इन्हीं अर्थों में कि उनकी राम चेतना मरणशील नहीं थी. राम देह तो डिकम्पोज़ हो गई लेकिन राम अध्यात्म नहीं. वह हमें आज भी जीवन देता है, वह आज भी हमें अनुप्राणित करता है. शाश्वतं कहकर तुलसी आधुनिक युग की एक दूसरी दुखती रग पर अँगुली रखते हैं. इस बुराई को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक फ्यूचर शॉक में एल्विन टॉफलर ने 'परिवर्तन की बीमारी' कहा था. परिवर्तन की एक अत्यावेशित गति ने मनुष्य को मनोवैज्ञानिक और सामाजिक ब्रेकडाउन की हालत में ला दिया है, रिश्तों में तदर्थता आ गई है. नौकरी में पुनर्यांत्रिकी (माइकल हैमर) और डाउनसाइज़िंग के तर्क उभरे हैं. एक पेपर प्लेट कल्चर है जहाँ इस्तेमाल करने के बाद आप फेंक दिए जाएँगे, पूर्वानुभव से एक शार्प ब्रेक है और नौकरियाँ हायर एंड फायर के तर्क पर होती हैं या हॉपिंग के. भौतिक और शारीरिक रूप से 'मानव जाति की रासायनिक और जैविक स्थिरता' संकट में है, मनोवैज्ञानिक रूप से संवेद्यता, ज्ञानात्मकता और निर्णयन

*हम ज़िन्दगी को बक्से में बंद देखने के आदी हो चले हैं. तुलसी इसी कारण हमारी आदतों को झटका देते हैं. सेनेका की तरह वह हमें आश्वस्त करते हैं कि जिस दिन को हम अपना आख़िरी दिन मानकर डरते हैं, वह तो सिर्फ़ अमरता का जन्मदिन है.*

में नए स्ट्रेस पैदा हुए हैं. शाश्वतं का मूल मंत्र देकर तुलसी जूझने की हमारी उस क्षमता को बढ़ाते हैं जिसे टॉफलर ने कोप-एबिलिटी कहा था. इस अति-द्रुत परिवर्तन में सुमित्रानंदन पंत की 'परिवर्तन' कविता का रस भी नहीं बचा है- बस कुछ ग्रंथियों का अतिरेकी स्राव है. इस युग के पाठक को 'शाश्वत' राम के आदर्श से तुलसी एक परिप्रेक्ष्य देते हैं. यह वह युग है जब परिवर्तन को अंदर से पूरी तरह जज़्ब भी नहीं किया होता है कि बाहर फिर बहुत कुछ बदल जाता है, कि जब लोग ज़्यादा से ज़्यादा अपने प्रसंग और संदर्भ से च्युत हो रहे हैं.

ऐसे में 'शाश्वतं' का बोध एक बहुत बड़ी आश्वस्ति है. लार्ड बायरन की एक काव्य पंक्ति है : 'इटर्निटी फारबिड्स दी टु फॉरगेट; ईश्वर हमें नहीं भूलेगा क्योंकि वह शाश्वत है. हम ईश्वर को नहीं भूलते क्योंकि वह शाश्वत है. तब हममें थामस मूर की तरह यह विश्वास बना रहता है कि मेरी परिभ्रमणशील देह में से फूल खिलेंगे और मैं उनमें भी रहूँगा. तब हम 'पानी केरा बुदबुदा' के नैराश्य को जीत पाते हैं- प्रभात होते ही यह तारा छिप जाएगा. यह अस्थिरता और क्षणभंगुरता का भाव नैराश्य भी पैदा करता है. यह हमारे देखने को सीमित करता है. यदि शाश्वत का अवधान न रहे तो हमें अपना क्षितिज ही अंतरिक्ष नज़र आएगा. अंतरिक्ष कि जिसका अन्त नहीं है, में टूटते हुए तारे को देखकर हमें अपनी नित्यचंचल हैसियत का आभास होता है. हम ज़िन्दगी को बक्से में बंद देखने के आदी हो चले हैं. तुलसी इसी कारण हमारी आदतों को झटका देते हैं. सेनेका की तरह वह हमें आश्वस्त करते हैं कि जिस दिन को हम अपना आख़िरी दिन मानकर डरते हैं, वह तो सिर्फ़ अमरता का जन्मदिन है. अ बर्थडे ऑफ इटर्निटी. हमारा डर व्यर्थ है. उस दिन तो ये छायाएँ पीछे छूट जाएँगी.

उस दिन जब हमारी मृत्यु होगी, सूर्य वैसे ही उगेगा. हवा वैसे ही चलेगी. वैसी ही बनी रहेगी लोगों की चहलक़दमी. यह नर्मदा की धार वैसे ही बह रही होगी. वैसे ही गूँज रही होंगी मन्दिरों में घंटियाँ, मस्जिदों में अजान. हम हमेशा से एक बायोजिओकेमिकल चक्र का हिस्सा थे. उस दिन भी उसी में घुल गए होंगे. मिट्टी से मिट्टी में. राख से राख में. यह भी एक सातत्य है, यह भी एक निरन्तरता. शाश्वतं की साक्षी.■

बृजेन्द्र श्रीवास्तव

लेखक-समीक्षक, साहित्य एवं कला, विज्ञान एवं अध्यात्म, ज्योतिष एवं वास्तु, ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान जैसे विविध विषयों पर निरंतर लेखन. ५० से अधिक शोध-पत्र विश्वविद्यालयों व राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत. जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर में ज्योतिर्विज्ञान अध्ययनशाला के अतिथि अध्यापक.

सम्पर्क : अपरा ज्योतिषम, २६९, जीवाजी नगर, ठाठीपुर, ग्वालियर-४७४०११

ईमेल - brijshrivastava@rediffmail.com मोबाइल - ९४२५३६०२४३

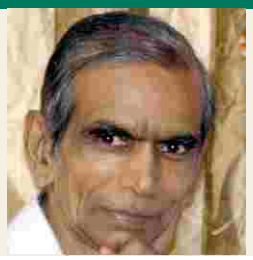



# जिज्ञासा

मनुष्य ने अभी तक जितनी दूरी तय की है- चाहे वह ज्ञान-विज्ञान हो या धर्म-अध्यात्म, मनुष्य की जिज्ञासा का उसमें बड़ा योगदान है. यह जिज्ञासा क्या है? कोई प्राकृतिक घटना कैसे घटित हुई, क्यों घटित हुई? कोई वस्तु ऐसी ही क्यों दिखती है? क्या कुदरत की गर्मी, सर्दी, आँधी भूकम्प से बचा जा सकता है? इस तरह के प्रश्न मन में उठना ही जिज्ञासा है.

जिज्ञासा इस प्रकार मन की एक वृत्ति है जो जानकारी प्राप्त करके, वस्तु या घटना के रहस्य के पीछे उसके सत्य को जानना चाहती है. इस लिहाज से जिज्ञासा, सच्चाई खोजने की तीव्र इच्छा का ही दूसरा नाम है. यह सत्यान्वेषण किसी भी क्षेत्र में, कहीं भी, किसी भी समय जागृत हो सकता है. पक्षी आकाश में कैसे उड़ते हैं? क्या मनुष्य भी वैसे ही उड़ सकता है? राइट बन्धुओं की इस जिज्ञासा के कारण ही पहला हवाई जहाज बना था. यह एक छोटा सा उदाहरण है. एक बहुत बड़ी जटिल जिज्ञासा को लें- पदार्थ में वजन कहाँ से आता है? सत्येन्द्रनाथ बोस ने यह कहा कि पदार्थ में एक अज्ञात अदृष्य और स्वयं भार रहित कण होता है जो पदार्थ के सभी सूक्ष्मकणों को भार देता है. उनके नाम पर इसे 'बोसोन' कहा गया. इसे बाद में God Particle गाड पार्टीकल या 'ईश्वरीय पदार्थ कण' कहा गया. वैज्ञानिकों ने इस 'ईश्वरीय कण' की खोज के प्रति सतत जिज्ञासा बनाए रखी और आज जेनेवा में भूमिगत कोलाइडर Large Hadron Collider (LHC) में इसकी खोज लगभग मान ली गई है यदि यह खोज सही साबित हुई तो अपनी इस जिज्ञासा वृत्ति के कारण हम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का रहस्य ही जान लेंगे 'ईश्वरीय कण' से भौतिक साक्षात्कार कर लेंगे.

> जिज्ञासा इस प्रकार मन की एक वृत्ति है जो जानकारी प्राप्त करके, वस्तु या घटना के रहस्य के पीछे उसके सत्य को जानना चाहती है. इस लिहाज से जिज्ञासा, सच्चाई खोजने की तीव्र इच्छा का ही दूसरा नाम है.

जिज्ञासा की परिणति इस प्रकार अक्सर नए सृजन के रूप में होती है जिसमें कोई नियम बनता है या कोई खोज होती है या कला साहित्य का कोई नया रूप उभरता है. इस प्रकार सृजन में गति मुख्यतः जिज्ञासा से ही आती है.

विज्ञान से हटकर यदि हम मानवीय सरोकार की बात करें तो बच्चे की आँखों में झाँकती निश्छलता और प्रेम, किशोरी के नयनों की चपलता और आँसुओं से डबडबाए वृद्धा के नेत्रों में धुंधलायी सी जीने की चमक - इन सबके पीछे के कारणों को जब मनुष्य खोजता है, तो उसकी यही खोज साहित्य में कविता को जन्म देती है, उसकी यही खोज शब्द के स्थान पर अन्य माध्यम से जब रूपायित होती है, तो चित्रकला, नाट्य कला, शिल्प संगीत कला जैसे कलारूप सृजित हो जाते हैं. इतना ही क्यों, शरीर विज्ञानी मनोभावों

की इन विभिन्न छवियों के पीछे प्रसन्नता या अवसाद कारक किसी हार्मोन या जीन्स की खोज भी कर डालते हैं.

कई बार मनुष्य की जिज्ञासा घटना या वस्तु केन्द्रित नहीं होती, अभौतिक या मन के स्तर पर होती है, जैसे सभी मनुष्य समाज में मिल जुलकर क्यों नहीं रह पा रहे? इसका बेहतर उपाय क्या है? इस तरह की सतत जिज्ञासावृत्ति से ही मनुष्य ने समाज शास्त्र बनाया है. इस समाज शास्त्र ने ही परिवार, विवाह गृहस्थाश्रम आदि अधिष्ठान, शासन प्रणालियाँ और तंत्र, न्याय व्यवस्था और परस्पर व्यवहार या आचरण की पुस्तक धर्मशास्त्र बनाए हैं- ये सब बेहतर जीवन के प्रति हमारी जिज्ञासाओं के ही विस्तारित रूप हैं.

जीवन के हर स्तर पर, जाने अनजाने की जाने वाली इस जिज्ञासावृत्ति के कारण ही चिन्तकों, विचारकों, आविष्कारकों, सुधारकों का सिलसिला बना रहा है. इसलिए यह ध्यान देने योग्य बात है कि जिस कालखण्ड में मनुष्य की, बेहतर जिन्दगी जीने की जिज्ञासा मन्द पड़ी है, उसी काल खण्ड में मनुष्य समाज अंधविश्वासों से घिरा रहा है जिससे सामाजिक वैज्ञानिक प्रगति भी धीमी पड़ी है. प्रख्यात भौतिकशास्त्री स्टीफन हाकिंग ने लोकप्रिय पुस्तक 'ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ टाइम' में यह माना है कि विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे सवाल जिन्हें उठाना चाहिए थे, अर्थात दार्शनिक और चिन्तक, उन्होंने पदार्थमय विश्व यहाँ क्यों है? हम यहाँ क्यों है? जैसे प्रश्न १९वीं सदी के बाद उठाये ही नहीं. यही कारण है कि विज्ञान- पदार्थ क्या है, पदार्थमय विश्व क्या है- तक सीमित बने रहने से पदार्थवादी बना रहा है और सही दिशा नहीं पकड़ सका है. अफसोस यह है कि हाकिंग्स को अभी भी यह ज्ञात नहीं है कि भारतीय दर्शन में, कोअहम्? मैं कौन हूँ? विश्व क्या है और क्यों है? की जिज्ञासा शुरू से ही की गयी है और इसीलिए भारतीय दर्शन में विश्व संरचना की बेहतर समझ के तत्व मौजूद हैं.

> *"जिस कालखण्ड में मनुष्य की, बेहतर जिन्दगी जीने की जिज्ञासा मन्द पड़ी है, उसी काल खण्ड में मनुष्य समाज अंधविश्वासों से घिरा रहा है जिससे सामाजिक वैज्ञानिक प्रगति भी धीमी पड़ी है."*

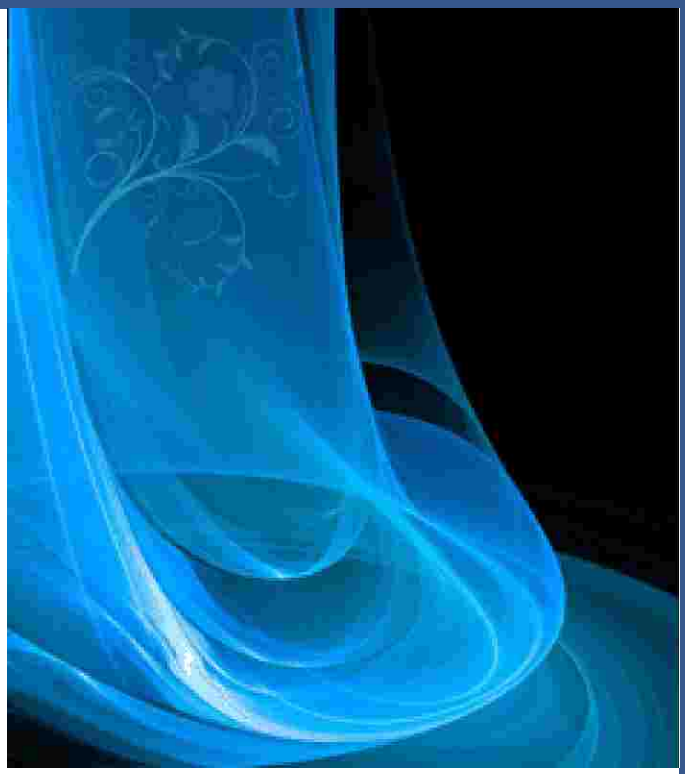

कोई यह न समझे कि केवल विज्ञान के क्षेत्र में ही या मानवीय संवेदनाओं के संसार में ही, क्यों-कैसे की जिज्ञासा और खुलेपन के लिए स्थान है तथा धर्म और अध्यात्म में तो बस विश्वास करने का इकतरफा बाध्य कारक मार्ग है, जिज्ञासा का यहां कोई काम नहीं. तो ऐसा समझना नितान्त भूल और भ्रम होगा. धर्मशास्त्रों में तो 'अथातो धर्म जिज्ञासा' ही पहला वाक्य है. इससे आगे आत्म अन्वेषण के अध्यात्म वाले मार्ग में भी 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' यह बादरणाय के ब्रह्म सूत्र का पहला वाक्य है. कर्मकाण्ड धर्म नहीं है, आचरण धर्म है. महाभारत के विष्णु सहस्त्रनाम १३७वें श्लोक में कहा गया है कि आचार से ही धर्म की उत्पत्ति होती है- 'सर्व आगमानाम् आचारः प्रथमं परिकल्पते. आचार प्रथमो धर्मः...'

व्यक्ति का आपसी व्यवहार आचरण, व आचरण ही धर्म - यह देशकाल समाज अनुसार बदलता आया है इसीलिए ऋषि गण एक-दूसरे के यहां हाथ में समिधा की भेंट लेकर जिज्ञासाएं शांत करने ही जाते थे, एक उपनिषद् का तो नाम ही प्रश्नउपनिषद् है.

सच बात तो यह है कि जिसे किसी भी क्षेत्र में कुछ जानने की जिज्ञासा है और जो जिज्ञासा-प्रेरित खोज में अनोखा आनन्द अनुभव करते हैं- किसी प्रोजेक्ट को मजबूरी में पूरा करने व सामग्री खोजने के कारण होने वाले तनावों से मुक्त रहते हैं- वे ही ज्ञानविज्ञान के क्षेत्र में जान डाल सकते हैं, उसे जीवन्त बना सकते हैं और व्यापक समाज के लिए उस खोज को ग्रहणशील भी. शायद इसलिए कि उनकी निजी जिज्ञासा वृत्ति का प्रत्येक मनुष्य में छिपी जिज्ञासा वृत्ति के साथ मिलान हो जाता है- लोक व्यापीकरण जैसा हो जाता है. आज अर्थ व्यवस्था और विज्ञान में जिस नव्याचार-नए पन या इनोवेशन की बात हो रही है इसकी जननी जिज्ञासा ही है.

निष्कर्ष यह है कि हमारा जो भी कार्य क्षेत्र है इसमें नई-नई बातें करने की सीखने की जिज्ञासा हम बनाए रखेंगे तो कार्य में हमारा आनन्द बढ़ जाएगा, इससे काम की गुणवत्ता भी बढ़ेगी और हमारे अन्तर मन का सुख भी.■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्वुन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेलः prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

# माता भूमि और पृथिवी-पुत्र

(काव्यान्तर पृथिवी सूक्त)

(अथर्ववेद- कांड १२, सूक्त १, ऋषि-अथर्वा और देवता पृथिवी)

विमृग्वरीं पृथवीमा वदामि क्षमां
भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं
त्वाभि नि षीदेम भूमे। २९।

विपुल तल, विस्तृत धरातल
शोधकारी धरा
संवर्धित सदा विधि के नियम
अन्न, घृत का प्रचुरतम भण्डार
बल, पोषण सहायक
हमारा बनो आश्रय.

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः
सेदुरप्रिये तं नि दध्मः
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि।३०।

देह की संशुद्धि को
जल बहे निर्मल
भूमि तुमसे
हम मलिनता त्याग जिससे
बनें उज्ज्वल और पावन.

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे
अधराद् याश्च पश्चात्
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि
पप्तं भुवने शिश्रियाणः।३१।

पूर्व जो तेरी दिशा
उत्तर दिशा तेरी तथा
उपदिशायें आदि, आगे और पीछे
सभी हों सुखकर
कहीं भी हम रहें
पतन हो न हमारा
संसार में.

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत
स्वस्ति नो भूमे नो भव मा विदन्
परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम्।३२।

पूर्व तेरा और पश्चिम भूमि
न हो पराभवकर हमें
कहीं ऊपर याकि नीचे
नष्ट हों हम
स्वस्तिकर तुम रहो पृथिवी
शत्रु से अविजित
हम बनें विजयी
कुशलतम नेतृत्व से.

यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां, समाम्।३३।

तुझे देखें भूमि
हम जब तक, जहां भी
भुवन भासित सूर्य से
वर्ष बीते, आयु बीते
किन्तु भीतर और बाहर दृष्टि केन्द्रित हम
रहें सन्नध निज
कर्तव्य पथ.

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम्
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिराधिशेमहे
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि।३४।

शयन करते पीठ पर
या दाहिने, बायें
चरण हों पश्चिम दिशा
भूमि करना त्राण तब मेरा
अखिल जग आश्रय
शरण तुम हो.

क्रमशः...

गीता के ये श्लोक **प्रो. अनिल विद्यालंकार** (sandhaan@airtelmail.in) द्वारा रचित गीता-सार से लिए जा रहे हैं, जिसमें गीता के मुख्य विषयों पर कुल १५० श्लोक संगृहीत हैं.

## विषय : प्रभु की भक्ति

**तुल्यनिन्दा-स्तुतिर्मौनीसंतुष्टोयेनकेनचित्।**
**अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान्मे प्रियो नरः।।**

गीता १२-१९

*निंदा और प्रशंसा जिसके लिए समान हैं, जिसकी मौन में रुचि है और जो हर चीज़ से संतुष्ट रहता है, जिसका अपना कोई घर नहीं है, जिसकी बुद्धि स्थिर है और जो भक्तिमान है, ऐसा मनुष्य मुझे प्रिय है.*

सभी धर्मों में ईश्वर को सर्वव्यापक माना गया है, अर्थात् ईश्वर का घर सभी जगह है. ऐसे सर्वव्यापी ईश्वर को वही पा सकता है जिसका अपना कोई घर नहीं हो. दूसरे शब्दों में, ऐसा मनुष्य ही ईश्वर को अपने निकट अनुभव कर सकेगा जो किसी विशेष स्थान, परिवार, देश, धर्म या संप्रदाय से बँधा न हो. मनुष्य का निरन्तर बोलते और सोचते रहनेवाला मन भी ईश्वर के निकट पहुँचने में बाधक बनता है. भाषा और चिन्तन के ऊपर उठकर मनुष्य परमात्मा को पा लेता है क्योंकि भाषातीत चैतन्य ही ईश्वर है. बाह्य और आतंरिक मौन की साधना इस दिशा में सहायक होती है.

**तुल्यनिन्दास्तुतिः** : जो अपनी निन्दा और प्रशंसा में समान रहता है, **मौनी** : जो मौन रहता है, **येन केनचित् सन्तुष्टः** : जिस किसी भी चीज़ से सन्तुष्ट रहता है, **अनिकेतः** : जिसका अपना कोई घर नहीं है, **स्थिरमतिः** : जिसकी बुद्धि स्थिर है, **भक्तिमान्** : जो भक्ति से युक्त है, ऐसा, **नरः** : मनुष्य, **मे प्रियः** : मुझे प्रिय है.

**प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।**
**विकारान् च गुणान् चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्।।**

गीता १३-१९

*तू जान ले कि प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि हैं. सृष्टि में विकार रूप से जितने भी पदार्थ विद्यमान हैं वे सभी और उनके साथ सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण भी प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं.*

सृष्टि का अन्य तत्त्व शुद्ध चैतन्य है. इसे पुरुष, परमात्मा, ब्रह्म, शिव आदि अनेक नामों से कहा गया है. यह तत्त्व स्वयं दृष्टा मात्र है. इसका एक सक्रिय पक्ष है जिसकी हलचल से सृष्टि का निर्माण होता है. पहले तत्त्व को नर रूप में और दूसरे तत्त्व को उसके सदा साथ रहने वाले नारी तत्त्व के रूप में देखा जाता है. इस प्रकार पुरुष और प्रकृति, ब्रह्म और माया, शिव और शक्ति, विष्णु और लक्ष्मी तथा राधा और कृष्ण का अनादि संयोग है. उनके इस संयोग से ही सृष्टि का निर्माण होता है. इसी से सत्व, रज, तम ये तीन गुण प्रकट होते हैं.

**प्रकृतिं पुरुषं च एव** : प्रकृति और पुरुष, **उभौ अपि** : दोनों को ही, **अनादी विद्धि** : अनादि जान. **विकारान् च** : और सृष्टि के विभिन्न पदार्थों के रूप में प्रकट होने वाले विकारों को, **गुणान् च एव** : और तीनों गुणों को भी, **प्रकृतिसंभवान् विद्धि** : प्रकृति से उत्पन्न हुआ जान.

**भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।**
**अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।**

गीता ७-४

*पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार इन आठ रूपों में मेरी प्रकृति विभक्त है.*

पुरुष और प्रकृति इन दो प्रमुख और अंतिम तत्त्वों में पुरुष सदा अविकारी रूप में केवल दृष्टा और साक्षी बनकर रहता है. प्रकृति में विकार होते हैं जिनसे इस सृष्टि की रचना होती है. यहाँ इन विकारों में से केवल प्रमुख आठ का संकेत किया गया है. इन आठ के अतिरिक्त, प्रकृति के विकारों में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पंच महाभूतों के सूक्ष्म रूप और शामिल हैं. इन तेईस तत्त्वों में मूल प्रकृति और पुरुष को मिलाकर सांख्य दर्शन में कुल पच्चीस तत्त्व माने गए हैं जिनके आधार पर सम्पूर्ण सृष्टि की व्याख्या की जा सकती है. इस सिद्धांत को योग और वेदांत दर्शन में भी स्वीकार किया गया है और मोटे तौर पर यह भारतीय चिन्तन की आधारभूमि है.

**भूमिः आपः अनलः** : पृथ्वी, जल और अग्नि, **वायुः खम् मनः बुद्धि** : वायु, आकाश, मन और बुद्धि, **च एव अहंकारः** : और अहंकार, **मे इयं प्रकृतिः** : मेरी यह प्रकृति, **इति अष्टधा भिन्ना** : इस आठ प्रकार से विभक्त है.

**अपरेयम् इतस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।**
**जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।**

गीता ७-५

*हे अर्जुन, यह तो मेरी अपरा प्रकृति है. इससे भिन्न, जीवरूपधारी मेरी एक परा प्रकृति है जो इस जगत् का आधार है.*

प्रकृति के पदार्थों की गति की दिशा प्रकृति के नियमों से निर्धारित होती है न कि अनुभूतियों से. पत्थर, बादल और तारे कुछ बनना नहीं चाहते, वे केवल प्रकृति के नियमों के अनुसार बदलते रहते हैं. पर प्रत्येक जीवधारी अपने शरीर के द्वारा किसी विशेष दिशा में गति करता है. मनुष्य के जीवन में एक निश्चित दिशा है. वह अशांति से शांति, दुःख से सुख और अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ना चाहता है. शरीर में सीमित चैतन्य जीव है. इस प्रकार प्रत्येक जीव भी प्रकृति का अंश हो जाता है. प्रकृति के इस प्रकार दो विभाग हैं : एक अपरा प्रकृति जो सर्वथा निर्जीव है और दूसरी परा प्रकृति जो चैतन्य से युक्त होकर जीवों के रूप में प्रकट हो रही है. इस सृष्टि का निर्माण जीवधारियों के लिए ही हुआ है.

**इयम् अपरा** : यह अपरा प्रकृति है, **महाबाहो** : हे अर्जुन, **इतः तु अन्यां** : इससे भिन्न, **जीवभूतां** : जीव के रूप में स्थित, **मे परां प्रकृतिं विद्धि** : मेरी परा प्रकृति को जान, **यया इदम् जगत् धार्यते** : जिससे यह जगत् धारण किया जाता है. ■

जारी...

डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता
गणित एवं औद्योगिक इंजीनियरिंग में डिग्रियां. तीस वर्षों से मैनेजमेंट के प्रोफेसर. फिलहाल युनिवर्सिटी ऑफ ह्यूस्टन-डाउनटाउन में सेवारत. पचास से अधिक शोध-पत्र विश्व के नामी जर्नल्स में प्रकाशित. दो मैनेजमेंट जर्नल के मुख्य संपादक एवं कई अन्य जर्नल्स के संपादक. हिंदी पढ़ने-लिखने में रुचि. काव्य-लेखन, विशेषकर सामयिक एवं धार्मिक काव्य लेखन में.
सम्पर्क : om@ramacharit.org

प्रश्नोत्तरी

# कौन बनेगा रामभक्त

१. वृषकेतु किनको कहा जाता है ?
   अ) राम
   ब) ब्रह्मा
   स) शिव
   द) रावण

२. इन घटनाओं का सही क्रम क्या है ?
   अ) अहिल्या उद्धार - ताडका वध - धनुष भंजन
   ब) ताडका वध - अहिल्या उद्धार - धनुष भंजन
   स) अहिल्या उद्धार - धनुष भंजन - ताडका वध
   द) धनुष भंजन - अहिल्या उद्धार - ताडका वध

३. रामजी को गंगावतर्ण की कथा किनने सुनाई ?
   अ) दसरथ
   ब) वशिष्ठ
   स) विश्वामित्र
   द) जनक

४. राजा ययाति के पुत्र ने अपने पिता के लिए क्या त्यागा ?
   अ) राज्य
   ब) जवानी
   स) पुत्र
   द) माता

५. रामायण में 'पम्पा' किसका नाम है ?
   अ) एक सरोवर
   ब) एक नदी
   स) एक पर्वत
   द) एक अप्सरा

६. सम्पाती जटायु के क्या लगते थे ?
   अ) भाई
   ब) पिता
   स) चाचा
   द) मित्र

७. सीताजी ने त्रिजटा को किस वस्तु की व्यवस्था करने की प्रार्थना की ?
   अ) पानी
   ब) आग
   स) भोजन
   द) रथ

८. 'सीता लंका में हैं' - यह समाचार सबसे पहले किसको मिले ?
   अ) सुग्रीव
   ब) राम
   स) लक्ष्मण
   द) जनक

९. रामजी ने रावण के पास किसको अपना दूत बनाकर भेजा ?
   अ) हनुमान
   ब) अंगद
   स) लक्ष्मण
   द) जामवंत

१०. मातालि किन का नाम है ?
   अ) भरत के मामा
   ब) इन्द्र के सारथी
   स) पाताल के राजा
   द) सीता की सखी

प्रश्नों के उत्तर तुरंत जानने के लिए kbr@ramacharit.org पर आग्रह किया जा सकता है.

*अगस्त २०१२ अंक में प्रकाशित प्रश्नों के सही उत्तर हैं :*

१. ब, २. स, ३. अ, ४. अ, ५. ब, ६. ब, ७. ब, ८. ब, ९. स, १०. ब.

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

पंचतंत्र

# शेर की खाल में गधा

किसी नगर में शुद्धपट नाम का एक धोबी रहता था. उसके पास एक गधा था. वह घास न मिलने के कारण बहुत दुबला हो गया था. एक दिन धोबी जब जंगल में घूम रहा था तो उसे एक मरा हुआ बाघ दिखाई दिया. उसने सोचा, यह तो बहुत अच्छा हुआ. यदि इस बाघ के चमड़े से ढक कर मैं अपने गधे को रात के समय छोड़ दिया करूं तो किसी की हिम्मत इसके पास आने की और इसे मार कर भगाने की न होगी.

यह विचार आया तो धोबी ने बाघ का चमड़ा उतार लिया और घर चला आया. अब वह रोज रात होते ही गधे को बाघ की खाल पहना देता और जौ के खेतों में चरने को छोड़ देता और भोर होने से पहले ही उसे पकड़ कर घर ले आता. इसी तरह समय बीतता रहा. गधा खूब मोटा हो गया. अब वह कुछ अड़ियल भी हो गया था. उसे पकड़कर घसीटने में धोबी को भी नानी याद आ जाती थी.

एक दिन कहीं दूर से किसी गधी के रेंकने की आवाज सुनाई दी. फिर क्या था, गधा आ गया जोश में. वह भी जवाब में रेंकने लगा. अब रखवालों को ताड़ते देर न लगी कि यह बाघ नहीं गधा है जिसे बाघ की खाल पहना दी गई है. उन्होंने उस पर डंडे और पत्थर बरसाना शुरू कर दिया और उसकी जान लेकर ही छोड़ा.

'इसीलिए मैं कह रहा था कि चोरी-छिपे बाघ की खाल पहना कर गधे की शक्ल तो भयावनी बना दी गई थी, इसके बाद भी वह अपनी बोली के कारण मारा गया.'

> *जिस आदमी की मां जीवित न हो, पत्नी कर्कश हो, उसे घर-बार छोड़कर सन्यास ले लेना चाहिए और वन का रास्ता पकड़ना चाहिए. क्योंकि उसका तो घर भी जंगल जैसा ही है.*

घड़ियाल बानर से इस तरह की बातें कर ही रहा था कि इसी समय किसी जलचर ने आकर घड़ियाल को बताया कि उसकी जोरू जो अनशन किए बैठी थी उसके लौटने में देर होती देखकर यह समझ बैठी कि घड़ियाल ने उसे छोड़ दिया और इसी दुख से उसकी जान निकल गई.

घड़ियाल के ऊपर तो जैसे पहाड़ ही टूट पड़ा. वह विलाप करते हुए कहने लगा, 'मेरा तो बसा-बसाया घर उजड़ गया. कहते हैं जिस आदमी की मां जीवित न हो, पत्नी कर्कश हो, उसे घर-बार छोड़कर सन्यास ले लेना चाहिए और वन का रास्ता पकड़ना चाहिए. क्योंकि उसका तो घर भी जंगल जैसा ही है.'

अब उसने बानर से कहा, 'मित्र मैंने तुम्हारे साथ जो दगा किया था उसे क्षमा कर देना. अब मैं अपनी पत्नी के वियोग में आग में जलकर मर जाऊंगा.'

बानर को उसकी बात पर हंसी आ गई. बोला, 'मैंने तो पहले ही कह दिया था कि तू जोरू का गुलाम है. अब तूने उसका पक्का विश्वास दिला दिया. अरे नादान, तुझे तो उल्टे खुश होना चाहिए और तू है कि आंसू बहा रहा है. ऐसी अड़ियल औरत के मरने का क्या दुख. इस पर तो उत्सव

मनाना चाहिए. कहते हैं, बदचलन और झगड़ालू औरत मिल जाए तो यही समझना चाहिए कि जवानी में ही शरीर को गलाने वाला बुढ़ापा आ टपका है. इसलिए जो आदमी सुख और शांति से जिंदगी बिताना चाहता है उसे औरत तो औरत, उसके नाम से भी बचकर रहना चाहिए. स्त्रियों का स्वभाव तो ऐसा होता है कि जो बात उनके मन में होती है वह जीभ पर नहीं आती, जो जीभ पर आती है वह बाहर नहीं निकल पाती और जो बाहर निकलती है उस पर वे चल कर नहीं दिखातीं. उनका कोई थाह पता पा ही नहीं सकता है.'

स्त्री तो दीपक की लौ की तरह ऊपर से देखने में ही प्रिय लगती है. जो व्यक्ति यह सोचकर कि यह मेरी प्रिया है उसके निकट जाते हैं उनकी दशा वही होती है जो दिए की लौ पर जलकर मरने वाले पतंगे की होती है.

अरे भाई, औरतों का स्वभाव तो गुंजा के फल जैसा होता है. ये बाहर से तो बहुत सुंदर लगती है पर इनके भीतर विष ही विष भरा होता है.

वह बानर औरतों के खिलाफ तरह-तरह के दृष्टांत देकर यह समझाता रहा कि इनसे बुरी दुनिया में दूसरी कोई चीज है ही नहीं. उसने कहा, 'चाहे तुम मार लो, पीट लो, अच्छे-अच्छे कपड़े और गहने पहना कर रिझाओ, मीठी-मीठी बातें करो, मनुहार और मिन्नत करो, औरत तो होती ही ऐसी दुष्ट हैं कि वह पूरी तरह तुम्हारे वश में आ ही नहीं सकती.'

बानर ने आगे कहा, 'यार, इनकी बुराई का कोई अंत हो ही नहीं सकता. थोड़े में तुम यही समझ लो कि जिस बच्चे को ये नौ महीने अपने पेट में पालती हैं उस पर भी जब क्रोध आता है तो ये उसकी जान तक ले लेती हैं. दूसरों की हत्या करना तो इनके बाएं हाथ का खेल है. इसलिए इनका स्वभाव ही रूखा होता है. यह कल्पना करना स्त्री के मन में प्रेम हो सकता है या इस बात की खोज करना कि स्त्री का हृदय भी पुरुषों की तरह कोमल हो सकता है या स्त्री के रूखे मन में सरसता पैदा करने की कोशिश करना या तो किसी बच्चे के लिए संभव है, या किसी वज्र मूर्ख के लिए. जिसे जीवन का कुछ अनुभव है वह तो ऐसा भूलकर भी नहीं कर सकता.'

बात घड़ियाल के भेजे में सचमुच घुस गई. वह बोला, 'बात तो तुम्हारी ठीक लगती है पर करूं क्या. मैंने तो एक साथ दो-दो अनर्थ कर डाले. एक ओर तो मैंने अपना बसा-बसाया घर उजाड़ डाला और दूसरी ओर तुम्हारे जैसे मित्र के साथ विश्वासघात किया. न घर के रहे न घाट के. 'जैसी मेरी पंडिताई है उससे दूनी तो तेरी है फिर भी न तो तेरे हाथ तेरा चहेता आया न तेरा पति. अरे हरजाई अब देख क्या रही है!'

बंदर ने यह कहानी नहीं सुनीं थी. इस बार घड़ियाल ने कहानी सुनाई.■


# Who Are You Calling Old?

**Proud2B60** :

*is a special campaign by Help Age India.*

Millions of people are living their later years with unprecedented good health, energy and expectations for longevity.

Suddenly, traditional phrases like "old" or "retired" seem outdated. Help Age's "Who Are You Calling Old?" campaign presents the many faces of this New Age.

New language, imagery, and stories are needed to help older people and the general public re-envision the role and value of elders and the meaning and purpose of one's later years. This campaign is about leading this change. It is about combating the negative image of the frail, dependent elder.

**General Query**

http://www.helpageindia.org

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

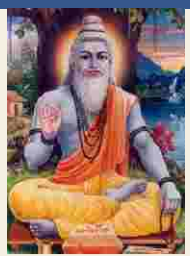

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

महाभारत

# आठवां दिन

आठवें दिन सवेरे भीष्म ने कौरवों-सेना की व्यूह-रचना कछुए की शक्ल में की. इस पर युधिष्ठिर धृष्टद्युम्न से बोले- 'कौरवों के कूर्म-व्यूह को देखकर अपनी सेना की व्यूह-रचना इस तरह करो कि जिससे शत्रु-व्यूह के तोड़ा जा सके. जल्दी उसकी व्यवस्था होनी चाहिए.'

तब धृष्टद्युम्न ने पांडवों की सेना की तीन शिखरों (चोटियों) वाले व्यूह में रचना की. इस व्यूह के एक सिरे पर भीमसेन और दूसरे सिरे पर सात्यकि अपनी-अपनी सेनाएं लेकर मुस्तैदी के खड़े हो गये. बीच वाले सिर पर स्वयं युधिष्ठिर खड़े रहे.

सामरिक कला में हमारे पूर्वजों को काफी प्रवीणता प्राप्त थी. लड़ने के तौर-तरीकों के बारे में यद्यपि कोई सुविस्तृति शास्त्र तो नहीं रचा गया, फिर भी प्रायः सभी क्षत्रियों को उनका परम्परागत ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त होता चला जाता था. शत्रु-पक्ष के अस्त्र-शस्त्र तथा उन शस्त्रों की शक्ति इत्यादि बातों को देखते हुए, उस समय की प्रचलित युद्ध-पद्धति के अनुसार उन दिनों के राजा लोग अपने अस्त्र-शस्त्रों एवं तौर तरीकों में आवश्यक परिवर्तन और परिवर्द्धन भी समय-समय पर कर लेते थे.

कुरुक्षेत्र के युद्ध को हुए कई हजार वर्ष हो चुके हैं. अतः महाभारत में जिस युद्ध का वर्णन है, उसकी आजकल के युद्ध की कार्रवाईयों के साथ तुलना करके उसे कोरी कल्पना ठहरा देना या निरर्थक बतंगड़ समझना उचित नहीं. अभी डेढ़ सौ साल हुए इंग्लैंड के वीर नेलसन ने अपनी सुप्रसिद्ध नौ-सेना को लेकर फ्रांसीसियों के छक्के छुड़ा दिये थे, किन्तु यदि उसी विजेता नेलसन के जहाजों और हथियारों की तुलना आजकल की नौ-सेना व हथियारों से की जाये तो उसके समय की लड़ाईयां विलक्षण ही प्रतीत होंगी! यदि डेढ़ ही सौ बरस के पहले की परिस्थिति यह थी तो महाभारत-युद्ध के समय की बात तो पूछना ही क्या है!

> *आठवें दिन का युद्ध हुआ तो पहले ही धावे में भीमसेन ने धृतराष्ट्र के आठ बेटों का वध कर दिया. यह देखकर दुर्योधन का हृदय विदीर्ण हो गया.*

एक बात और भी है, जिसे हमें ध्यान में रखना चाहिए. युद्ध को ही विषय बनाकर जो काव्य या आख्यान-ग्रंथ रचा जाये, उससे युद्ध की कार्रवाइयों एवं विभिन्न हथियारों का प्रामाणिक विवरण तथा व्याख्यान की आशा नहीं की जा सकती. हमारे यहां प्राचीनकाल में युद्ध के जो तौर-तरीके और पद्धति प्रचलित थी, वह क्षत्रियोचित संस्कृति का ही एक अंग मानी जाती थी. युद्ध के तौर-तरीकों के रहस्य एवं गतिविधि का ज्ञान उन्हीं लोगों तक सीमित रहा जिनका उनसे

काम पड़ता था. कवियों या ऋषियों के रचित ग्रंथों में उन पद्धतियों की व्याख्या या विवरण नहीं पाये जा सकते. आजकल के किसी गल्प या उपन्यास में कहीं किसी रोग के इलाज का पूरा विवरण, दवाओं की सूची-सहित देता जाये. यदि दे भी तो भी युद्ध-प्रणाली के पूरे शास्त्र की आशा रखना सर्वथा अनुचित होगा.

'मकर-व्यूह क्या चीज होती है? कर्म-व्यूह किसे कहते हैं? श्रृंगारक होता क्या है? बाणों की बौछार से अपने चारों तरफ किला-बंदी कर लेना कैसे हो सकता था? शरीर के बाणों से बिंध जाने पर भी कैसे जीवित रहा जाता था? कवचों से वीरों की कहां तक रक्षा होती थी?' इत्यादि बातों का विवरण व्यासजी ने अपने ग्रंथ में इस ढंग से नहीं दिया है जिससे आजकल के पाठकगण उसे समझ सकें. जितना विवरण उन्होंने दे दिया है वही उनकी विशेष प्रतिभा का द्योतक है.

> *सामरिक कला में हमारे पूर्वजों को काफी प्रवीणता प्राप्त थी. लड़ने के तौर-तरीकों के बारे में यद्यपि कोई सुविस्तृत शास्त्र तो नहीं रचा गया, फिर भी प्रायः सभी क्षत्रियों को उनका परम्परागत ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त होता चला जाता था.*

आठवें दिन का युद्ध हुआ तो पहले ही धावे में भीमसेन ने धृतराष्ट्र के आठ बेटों का वध कर दिया. यह देखकर दुर्योधन का हृदय विदीर्ण हो गया. कौरव-सेना के लोग डरे कि कहीं भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा आज ही न पूरी कर दे.

उस दिन एक ऐसी घटना हुई जिससे अर्जुन शोक-विह्वल हो उठा. उसका लाड़ला बेटा और साहसी वीर इरावान, जो एक नागकन्या से पैदा हुआ था. उस दिन खेत रहा. वीर इरावान पांडवों की सहायता के लिये आया हुआ था और उसने ऐसी कुशलता से युद्ध किया था कि सारी कौरव-सेना में भारी तबाही मच गई थी. यह देखकर दुर्योधन ने राक्षस वीर अलम्बुष को इरावान के विरुद्ध लड़ने के लिये भेजा. दोनों में बड़ी देर तक घोर संग्राम होता रहा. अंत में राक्षस के हाथों इरावान मारा गया.

अर्जुन को इस बात की खबर मिली तो यह दुख उससे सहा नहीं गया. भरी हुई आवाज में श्रीकृष्ण से बोला- 'वासुदेव! काका विदुर ने पहले ही कहा था कि दोनों पक्षवालों को युद्ध से दुःसह दुख प्राप्त होगा. धिक्कार है हमें, जो सिर्फ सम्पत्ति के अर्थ ऐसे निकृष्ट कार्य करने पर उतारू हो गये हैं. इस भारी हत्याकांड के परिणामस्वरूप हम या वे (कौरव) न जाने कौन-सा सुख प्राप्त करेंगे. मधुसूदन, अब मैंने जाना कि भाई युधिष्ठिर ने क्यों दुर्योधन से अनुरोध किया था कि कम से कम पांच गांव देकर ही संधि कर लें. सचमुच उन्होंने दूर की सोची थी किन्तु मुर्ख दुर्योधन ने पांच गांव तक देने से इनकार कर दिया, जिससे अब दोनों पक्षों में ये जो पाप-कर्म हो रहे हैं- उन सबका वही कारण बना. यदि मैं इस युद्ध में भाग ले रहा हूं तो वह केवल इसीलिये कि लोग यह कहकर मेरी निन्दा न करें कि यह कायर है, डरपोक है.'

'जब मैं युद्ध क्षेत्र में पड़े हुए इन क्षत्रियों को देखता हूं तो हृदय गरम हो उठता है. धिक्कार है हमारे जीवन को, जो अधर्म की ही भित्ति पर स्थित है!'

इधर भीमसेन के पुत्र घटोत्कच ने जब देखा कि इरावान मारा गया तो उसने इतने जोर से गर्जना की कि सारी सेना सुनकर थर्रा उठी. उसके बाद वह कौरव-सेना पर टूट पड़ा और घोर प्रलय मचाने लगा. कई स्थानों पर घबराहट के मारे सेना बिखर गई. यह हाल देखकर स्वयं दुर्योधन घटोत्कच के मुकाबले में आ गया.

दुर्योधन का साथ देने के लिए वंग-नरेश भी अपनी गज सेना के साथ उधर ही जा पहुंचा. दुर्योधन ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया और घटोत्कच की सेना के कितने ही वीरों को मार गिराया. इस पर घटोत्कच को बड़ा क्रोध आया. उसने दुर्योधन पर शक्ति नामक हथियार का प्रयोग किया. उसके प्रहार से दुर्योधन मारा ही जाता, पर वंग-नरेश ने अपना हाथी बीच में डालकर उसको बड़ी खूबी से बचा लिया. दुर्योधन के बजाय हाथी घटोत्कच की शक्ति की भेंट चढ़ गया.

इसी बीच भीष्म को पता लगा कि दुर्योधन संकट में है, तो उन्होंने आचार्य द्रोण के नेतृत्व में एक बड़ी सेना दुर्योधन की सहायता के लिये भेद दी. कुमुक पहुंच जाने पर कई सुविख्यात कौरव-वीरों ने घटोत्कच पर एक साथ हमला कर दिया.

उस समय जो गर्जन चारों दिशाओं में हुआ उससे युधिष्ठिर को मालूम हो गया कि घटोत्कच पर कोई आफत आई है. उन्होंने तत्काल भीमसेन को घटनास्थल पर भेज दया. भीमसेन के आ जाने पर तो युद्ध की भयानकता और भी अधिक हो गई. पर जल्दी ही सूर्यास्त हो गया और युद्ध बंद हुआ.■

**मनोहर बाथम**

२ जनवरी १९५५ को भोपाल में जन्म. बी.ए., बी.एड. (अंग्रेजी साहित्य), मानवाधिकार विषय में स्नात्कोत्तर डिप्लोमा. कविता, कहानी, डायरी एवं आलेख लिखते हैं. पहली गद्य पुस्तक 'आतंकवाद-चुनौती और संघर्ष' के लिए पं. गोविन्दवल्लभ पंत पुरस्कार एवं इंदिरा गाँधी राजभाषा राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त. दो कविता संग्रह प्रकाशित. 'सरहद से' कविता संग्रह का १७ भारतीय भाषाओं में अनुवाद एवं १२ भाषाओं में प्रकाशन. विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलनों, विचार गोष्ठियों में भागीदारी एवं कई साहित्यिक संस्थाओं में योगदान. रेडियो एवं दूरदर्शन कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी. सम्प्रति - महानिरीक्षक, सीमा सुरक्षा बल, सिलचर, असम.

सम्पर्क : फ्रंटियर मुख्यालय, सीमा सुरक्षा बल, सिलचर (असम) ईमेल : ई-मेल : mlbathambsf@gmail.com

अनुवाद

भोजपुरी अनुवाद : शुभदा पाण्डेय

# चिट्ठी सीमा पर

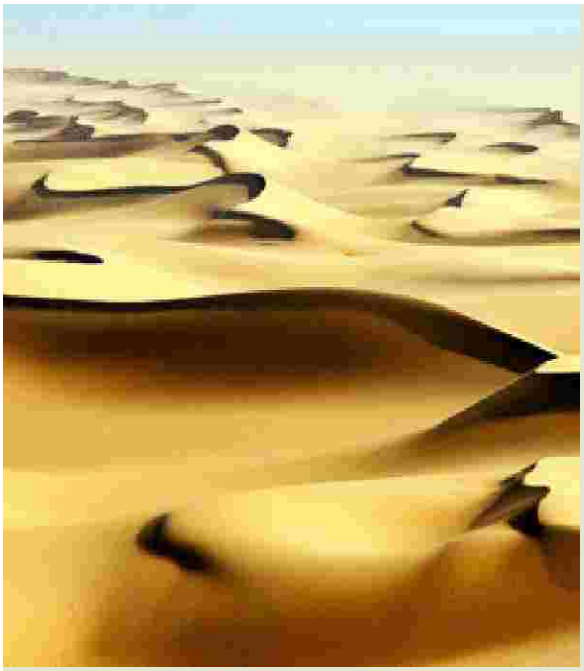

ओकरा चिट्ठी के
शुरूआत में
गणेश वन्दना रहे
फेर सेन्दुर के बेदी
फेर लम्बा झढ़त बालन के कहानी

तनिकी एक शरम
अउरी फिर चिट्ठी में
फूलन के चित्रकारी
जइसे समेटे चाहन होखे
दोनिया के सारा महक

धदिहल होठ फेर जीभ
गोन के गीला कइला के बहाने
लिफाफा बंद कइके
फेर उ लगवलस
उपर एगो काजल के टीका
अउरी भेज दिहलस
सीमा पर
सबका नजरन से बचा के.

■

**ताराशंकर बन्दोपाध्याय**

(१८९८-१९७१)

बांग्ला साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकारों की अग्रिम पंक्ति में अन्यतम हैं. उन्होंने ६५ उपन्यास, ५३ कहानी संग्रह, १२ नाटक, ४ प्रबन्ध पुस्तक, ४ आत्मकथाएँ एवम् २ भ्रमण कथाएँ लिखी हैं. वे रवीन्द्र पुरस्कार, साहित्य एकैडमी सम्मान एवम् ज्ञानपीठ पुरस्कार के साथ पद्मभूषण से सम्मानित किए जा चुके हैं.

अनुवाद

मूल बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद गंगानन्द झा

# मृत्यु और रोग

महाभारत का प्रसंग है भगवान प्रजापति अपने ही मन के आनन्द में सृष्टि करते चले जा रहे थे. सृष्टि के बाद सृष्टि. विचित्र से विचित्रतर. तब पृथ्वी पर केवल सृष्टि ही थी, लय या मृत्यु कहीं नहीं थी. तभी जैसे कोई क्षीण कातर स्वर सुनाई बड़ा उन्हें. उन्होंने कान खड़े किए, अब नासिकाओं में किसी अस्वास्थ्यकर गन्ध ने प्रवेश किया.

अब उन्होंने सृष्टि की ओर दृष्टिपात किया. देखकर चौंक पड़े वे. यह क्या? उनकी सृष्टि का एक वृहत् अंश जीर्ण, मलिन, दुर्बल और कर्कश हो गया था. पृथ्वी की छाती जीवों के भार से क्लान्त. स्वभाव से उच्छृंखल फिर भी उच्छवास विहीन – जड़. विपुल भार से पृथ्वी कातर आर्तनाद कर रही थी. और वह अस्वास्थ्यकर गन्ध! उस गन्ध की सृष्टि हुई थी सृष्टि की उसी जरा-जीर्ण देह से.

प्रजापति ब्रह्मा स्थिति का निवारण करने की चिन्ता में निमग्न हुए. ललाट पर चिन्ता की कुञ्चन रेखाएँ उभड़ आईं. अकस्मात् चिन्तामग्नता के बीच उनका मुखमण्डल अकारण कुटिल हो उठा. उज्जवल ललाट पर भ्रकुटि तन गई. मुस्कुराहट से खिले चेहरे पर अप्रसन्नता उभड़ आई. उज्ज्वल नीले आकाश पर जैसे दिगन्त से मेघ छाने लगा. साथ-साथ उनके शरीर से छाया की तरह की कोई चीज निकल आई; आहिस्ते-आहिस्ते उस छाया ने काया ग्रहण किया, — उनके सामने एक नारी मूर्ति कृताञ्जलि होकर खड़ी हुई थी. पिंगलकेशा, पिंगलनेत्रा, पिंगलवर्णा; गले और कलाई में पद्मबीज का आभूषण, अंग पर गैरिक काषाय; उस नारीमूर्ति ने भगवान को प्रणाम करके पूछा, पिता, मैं कौन हूँ? मेरा कर्म क्या है? आपने किस उद्देश्य से मेरी सृष्टि की है?

भगवान प्रजापति ने कहा, तुम मेरी कन्या हो. तुम मृत्यु हो. सृष्टि में संहार-कर्म के लिए तुम्हारी सृष्टि हुई है. यही तुम्हारा कर्म है.

चमक उठी मृत्यु— अर्थात वह नारी मूर्ति; आर्त्तस्वर में बोली, पिता होकर यह कैसे कुटिल कर्म में तुमने मुझे नियुक्त किया है? क्या यह नारी का कर्म है? मेरा नारी हृदय - नारी धर्म यह कैसे सह पाएगा?

> *मृत्यु ने कहा,*
> *मैं नारी हूँ. पत्नी के पास*
> *से पति को कैसे ग्रहण*
> *करूँगी? माँ की छाती*
> *से उसके अस्तित्व के*
> *अंश, उसकी सन्तान*
> *को ग्रहण करूँगी!*

भगवान ने हँसकर कहा, क्या करुँ? सृष्टि जब किया है तो वह कर्म करना ही होगा.

मृत्यु ने कहा, मुझसे नहीं हो सकेगा.

करना तो होगा ही.

मृत्यु ने तपस्या करना प्रारम्भ किया. कठोर तपस्या किया. भगवान आए — कहा, वर माँगो?

मृत्यु ने वर माँगा, इस निष्ठुर कर्म से मुझे मुक्त करें.

नहीं. लौट गए भगवान.

फिर से तपस्या प्रारम्भ किया मृत्यु ने, इस बार की तपस्या पहले की तपस्या से भी अधिक कठोर थी.

पुनः आए प्रजापति.

पुनः वही वर चाहा मृत्यु ने, इस निष्ठुरतम कर्म से कन्या को छुटकारा दें प्रभु.

प्रजापति ने असहमति से सिर हिलाया, कहा, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता.

और अगले क्षण वे अदृश्य हो गए.

कन्यारूपिणी मृत्यु गगणचुम्बिनी होकर खड़ी रह गई. उसके बाद फिर आसन ग्रहण किया.

तृतीय बार तपस्यामग्न हुईं मृत्यु. इस बार उसने जैसी तपस्या की जिससे कठोरतर तपस्या कभी किसी ने भी नहीं की. पुनः भगवान ब्रह्मा को आना पड़ा. पुनः मृत्यु ने वही वर चाहा. वर माँगने के प्रयास में इस बार उसके दोनों ओंठ काँप उठे. आँखों से अनियन्त्रित धारा में अश्रु निकलने लगे. ब्रह्मा घबड़ा गए. व्यस्त होकर अपनी अञ्जलि फैलाकर उसमें अश्रुकणों को थामा. उन्होंने कहा, बेटी, तुम्हारे आँसुओं के सृष्टि पर पड़ते ही इसके ताप से सृष्टि ध्वस्त हो जाएगी.

> *मृत्यु अन्धी और बहरी है. रोग ही उसकी सन्तानों की तरह हमेशा उसका हाथ पकड़ कर चलते रहते हैं. पर उसका नियन्त्रण करता है काल-नियम. जिसका काल मृत्यु भी होती है! अपने पाप से आदमी अपनी आयु-क्षय करके काल का अकाल में आह्वान करता है.*

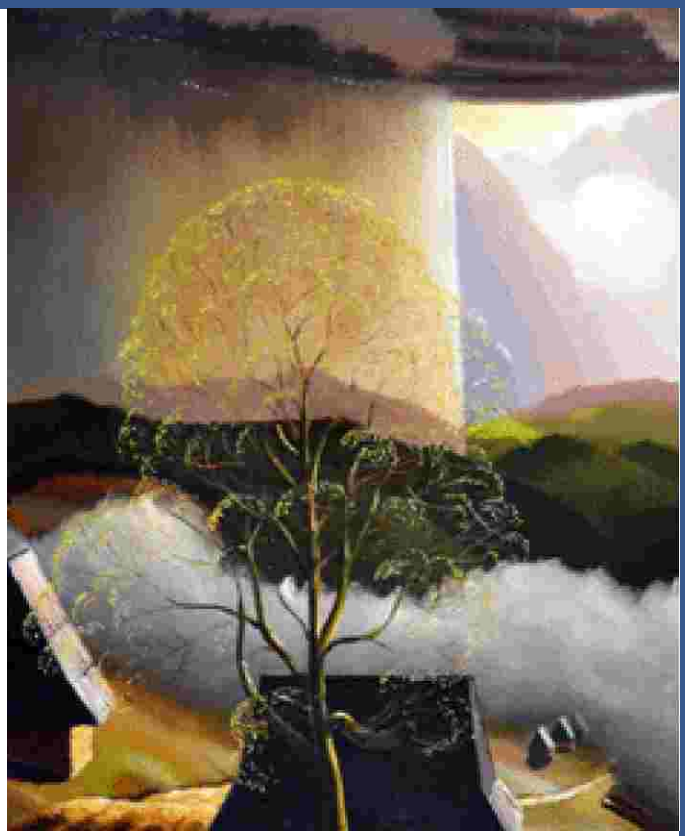

देखते ही देखते उन अश्रु-बिन्दुओं से एक-एक कर कुटिल मूर्त्तियों का आभिर्भाव हुआ. भगवान ने कहा, ये सब रोग हैं. ये तुम्हारी ही सृष्टि हैं; ये ही तुम्हारे सहचर बनेंगे.

मृत्यु ने कहा, किन्तु मैं नारी हूँ. पत्नी के पास से पति को कैसे ग्रहण करुँगी? माँ की छाती से उसके अस्तित्व के अंश, उसकी सन्तान को ग्रहण करुँगी! इस निष्ठुर कर्म का पाप!

बाधा देते हुए भगवान ने कहा, सभी पाप-पुण्य से परे होओगी तुम. पाप तुम्हें छुएगा नहीं. इसके अलावे उनके कर्मफल तुम्हारा आह्वान करेंगे इन रोगों के माध्यम से. अनाचार, अमिताचार, व्यभिचार के कारण आदमी रोगाक्रान्त होगा. तुम उन्हें दोगी मुक्ति यन्त्रणा से, शान्ति ज्वाला से, तथा जन्मान्तर पुराने जीवन से.

किन्तु, मृत्यु ने व्याकुल होकर कहा, शोकातुर पत्नी-पुत्र, माता-पिता मिट्टी पर लोटते रहेंगे, अपनी छाती पीटते रहेंगे, सिर पटकते होंगे, यह दृश्य मैं कैसे देखा करूँगी?

भगवान ने कहा, तुम अन्धी हुई, देखना नहीं होगा तुमको.

मृत्यु ने कहा, और क्रन्दन? नारी-कण्ठ का आर्त्त-विलाप?

बाधा देते हुए भगवान बोले, तुम वधिर हुई. कोई आवाज तुम्हारे कानों में नहीं पहुँचेगी.

तब से मृत्यु अन्धी और बहरी है. रोग ही उसकी सन्तानों की तरह हमेशा उसका हाथ पकड़ कर चलते रहते हैं. पर उसका नियन्त्रण करता है काल-नियम. अकाल मृत्यु भी होती है! अपने पाप से आदमी अपनी आयु-क्षय करके काल का अकाल में आह्वान करता है. जहाँ काल रोग का सहायक नहीं होता, केवल वहाँ पर ही चिकित्सा-शास्त्र की भूमिका रोग को प्रतिहत करने की होती है.■

शकुन्तला बहादुर

अनंतचतुर्दशी १९३४ को लखनऊ में जन्म. एम.ए. (संस्कृत) में सर्वाधिक अंकों का पदक हासिल किया. जर्मन एकेडेमिक एक्सचेंज सर्विस की फ़ेलोशिप पर जर्मनी में दो वर्षों तक शोधकार्य. ट्यूबिंगेन विश्वविद्यालय में ही संस्कृत एवं हिन्दी का अध्यापन. महिला महाविद्यालय लखनऊ में संस्कृत प्रवक्ता. विभागाध्यक्ष एवं प्रधानाचार्या के पदों पर कुल ३६ वर्षों तक कार्य करते हुए सेवानिवृत्त. योरोप तथा अमेरिका की साहित्यिक-गोष्ठियों में भाग लेते हुए अनेक देशों का भ्रमण. विगत ११ वर्षों से कैलिफ़ोर्निया, अमेरिका में निवास. प्रकाशित कृतियाँ : 'मृगतृष्णा' एवं 'बिखरी पंखुरियाँ' - काव्यसंग्रह, 'विविधा' - ललित निबन्ध-संग्रह, 'सुधियों की लहरें' - लेख एवं संस्मरण. सम्पर्क : shakunbahadur@yahoo.com

# त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्प्यते

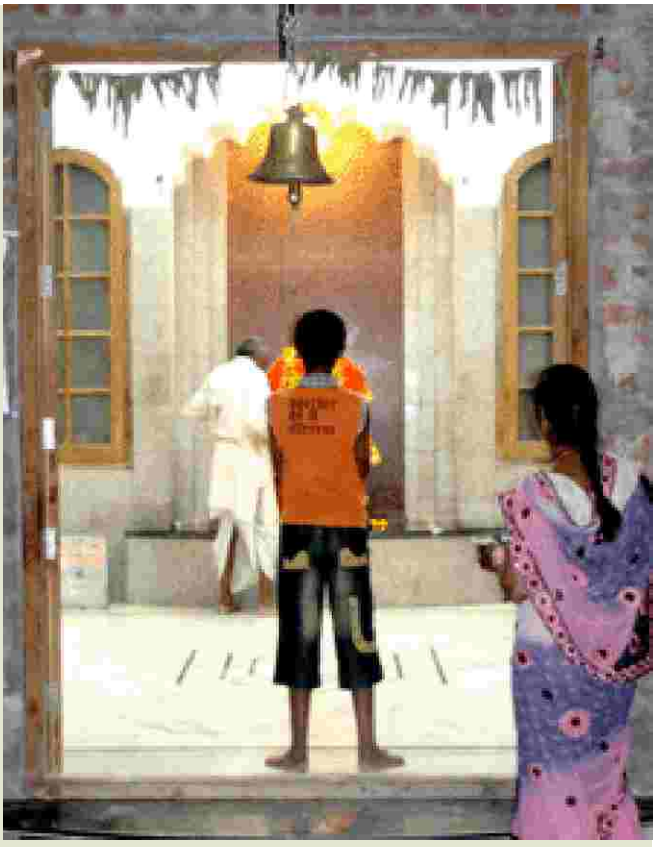

प्रभो! इतना बता दो तुम
कि पूजा को क्या लाऊँ मैं?
कि कण कण में बसे तुम पर
क्या तुमको ही चढ़ाऊँ मैं?

तुम्हारी ज्योति से ज्योतित
हैं सूरज, चाँद और तारे
तुम्हारी आरती को फिर
क्यों लघु दीपक जलाऊँ मैं?

तुम्हारी ही कृपा से हैं
ये नदियाँ सिन्धु और झरने
तुम्हीं को अर्घ देने को
फिर गंगाजल क्यों लाऊँ मैं

तुम्हीं ने तो हैं उपजाए
ये तरुवर फूल और कलियाँ
तुम्हारी अर्चना को क्या
उन्हीं फूलों को लाऊँ मैं?

तुम्हीं ने तो दिये हमको
ये फल, मिष्ठान्न और मेवा
तुम्हारे भोग को ही फिर
ये लड्डू क्यों चढ़ाऊँ मैं?

तुम्हारे ओम् के स्वर से
है गूँजे सृष्टि ये सारी
तुम्हें ही फिर सुनाने को
ये घंटी क्यों बजाऊँ मैं?

तुम्हीं ने तो बनाए हैं
ये पशु, पक्षी सभी प्राणी
तुम्हें ही पूजने को क्यों
तेरी प्रतिमा बनाऊँ मैं?

प्रभो! तुम तो त्रिलोकी हो
सभी लोकों में बसते हो
तुम्हारी ही प्रतिष्ठा को
फिर मंदिर क्यों बनाऊँ मैं?

■

डॉ. सुभाष शर्मा

१९५१ में जलालाबाद, कन्नौज में जन्म. बी.ई. मेकेनिकल, एम.टेक. आईआईटी, दिल्ली तथा क्वींसलेंड यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलोजी, आस्ट्रेलिया से पीएचडी. आईआईटी, दिल्ली, अमेरिका एवं योरोप के अनेक विश्वविद्यालयों में अध्यापन. शोधकार्य के उपरांत आस्ट्रेलिया में बस गये. कविता लिखते हैं एवं मेलबर्न शहर में 'साहित्य संध्या' के नाम से कवि गोष्ठियों का आयोजन. ऑस्ट्रेलिया में रेडियो, टेलीविजन पर आयोजित कवि गोष्ठियों में शिरकत. ऑस्ट्रेलिया के ११ हिन्दी कवियों के कविता संग्रह 'बूम रैंग' में सह-सम्पादक. सम्प्रति - सेन्ट्रल क्वींसलैंड यूनिवर्सिटी में मेंटीनेंस मैनेजमेंट विभाग के अध्यक्ष हैं.

सम्पर्क : sharmalog@gmail.com

कविता

## विदेस भाजि आए हैं

अपने ही देस में अपने ही लोगन के
दांव पेंच देखि हम विदेस भाजि आए हैं
भेद भाव धन अभाव, देख के मन मुटाव
यहाँ देखो आज हम चैन ठौर पाए हैं

पेट काटि बाप ने पाले थे पांच पूत
उन सबके बीच में हम ही पढि पाए हैं
उन्हें छोडि-छाडि पाछे उनके ही हाल पे
दांव पाइ आज हम विदेस भाजि आए हैं

मान हानि ताक़ धरि अपनेन को दूर करि
धरती के दूसरे छोर पे हम आए हैं
पैसा ही पैसा पैसा की देखि मार
सगी माँ को दै तलाक सौतेली पाए हैं

कबहूँ मन याद करत कबहूँ भूलि जात है
कबहूँ मन सोचत है सोचके पिरात है
कोई मति धीर पीर पे जब धरत हाथ
मन ही मन हिये में होत बरसात है

कबहूँ अकुलात मन कबहूँ उकतात मन
कबहूँ हम अपने ही देस को गरियात हैं
कोई अनजान जब माटी को देत लात
काहे छोडि आए हम! जिया पछितात है.
■

## पतझड़

मैं पतझड़ के पत्तों जैसा यूं ही रोज बिखरता हूँ
रोज अधूरे सपने लेकर सोता हूँ और जगता हूँ

आशा और अभिलाषा का मैं मन्त्र अधूरा पढ़ता हूँ
अंतर्मन से जिज्ञासा का पत्र अधूरा लिखता हूँ
कंठ मुक्त होकर गाता हूँ कुछ मन में रख लेता हूँ
रोज अधूरे सपने लेकर सोता हूँ और जगता हूँ

बैठ रेत के टीले पर मैं मन में मरू को आश्रय देकर
पथ से कुछ कांटे चुन-चुन कर वैभव की गरिमा को लेकर
मैं गिरि की हिम जैसे यूं ही जमता और पिघलता हूँ
रोज अधूरे सपने लेकर सोता हूँ और जगता हूँ

रोज जनम लेकर मरता हूँ बादल-सा उड़ता फिरता हूँ
मौन मरुस्थल में बूंदें बन जहां-तहां गिरता फिरता हूँ
मैं बादल से बूंदें बन कर यूं ही रोज बरसता हूँ
रोज अधूरे सपने लेकर सोता हूँ और जगता हूँ

मैं चन्दन से खुशबू लेकर जा बैठा बबूल के ऊपर
बाँध पैर में सुन्दर नूपुर रम्भा उतरी जैसे भू पर
मैं रम्भा के नूपुर जैसे यूं ही रोज बिखरता हूँ
रोज अधूरे सपने लेकर सोता हूँ और जगता हूँ.
■

शुभदा पाण्डेय

२२ जुलाई १९५९ को सेवरही, कुशीनगर में जन्म. हिन्दी में एम.ए., एम.एड., गाँधी विचारधारा में स्नातकोत्तर उपाधि. डेढ़ दर्जन से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविता, कहानी, गीत, ग़ज़ल एवं आलेखों का प्रकाशन. आकाशवाणी से रचनाएँ प्रसारित एवं देश के प्रतिष्ठित कवि सम्मेलनों में भागीदारी. एक दर्जन से अधिक पुरस्कारों से सम्मानित. मलेशिया, सिंगापुर, नेपाल, थाईलैंड में आयोजित सम्मेलनों में कविता-पाठ एवं आलेखों का वाचन. सम्प्रति - असम विश्वविद्यालय, सिलचर के हिन्दी प्रकोष्ठ में कार्यरत.

सम्पर्क : असम विश्वविद्यालय, सिलचर, असम-७८८०११ ईमेल : shubhadapandey1000@gmail.com

# बातचीत का हिस्सा

कई बार हमारे पास
बातचीत करने को
कुछ भी नहीं रहता
और हम शुरू करते हैं
किसी पुरानी बिछी चादर की कहानी
लिहाजा पहले
बहुत चटक था उसका रंग

लोगों ने बहुत सराहा
बहुत दिन चला
दाम भी...

एक बार तो खो ही गयी थी
धोबी के यहाँ से
फिर उस पड़ौसी की
छत पर मिली
जहाँ ये सूख रही थी

हमारे एलबम के कई चित्रों में
ये चादर भी है
पुराने होने पर
हो गयी हल्की चिकनी
पुराने चावल जैसी
और लोग इसे
ले जाने लगे यात्राओं में

यात्राएँ भी खूब की हैं इसने
भामरा गढ़, आला पल्ली
गढ़चान्दूर, गढ़चिरौली
कहाँ-कहाँ नहीं गयी ये?

रानू जब अपने छोटे
बच्चों के साथ आयी थी
बच्चा इसी चादर को तलाशता
दूसरे पर सोने का
नाम ही नहीं लेता

सूत्रधार कहते जाते हैं ये कहानी
प्रकारान्तर से अपनी भी
एक बार को सोचती हूँ
बातचीत करने का
ये भी कोई मुद्दा है?
मानो यह कोई चादर न हो
जीवन का हिस्सा है.

■

**देवशंकर नवीन**

२ अगस्त १९६२ को जन्म. एम.ए., पी-एच.डी. (हिन्दी, मैथिली), एम.एस-सी. (भौतिकी), पुस्तक प्रकाशन, अनुवाद में पी.जी. डिप्लोमा. जी.एल.ए. कॉलेज, डालटनगंज में छह वर्षों तक अध्यापन तथा नेशनल बुक ट्रस्ट के संपादकीय विभाग से जुड़े रहे. मैथिली एवं हिन्दी में मूल तथा सम्पादित लगभग तीन दर्जन पुस्तकें प्रकाशित. अंग्रेजी सहित कई अन्य भारतीय भाषाओं में रचनाएँ अनूदित. मध्ययुगीन भक्ति साहित्य, राजकमल चौधरी का साहित्य, तुलनात्मक साहित्य, अनुवाद अध्ययन, एवं प्रकाशन तकनीक में विशेष रुचि. सम्प्रति - अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में अध्यापन.

सम्पर्क : ए-२/१९८, फेज-५, आयानगर एक्स्टेंशन, नई दिल्ली-११००४९ ई मेल : deoshankar@hotmail.com

कविता

## उखड़े हुए पेड़

विश्वग्राम की धारणा
वसुधैव कुटुम्बकम की तुलना में
उन्नत लगती है इस देश में

चूल्हे, चौके, खेत, खलिहान
फाल, पटवन, करीन
दालान-चौपाल
अलाव-बोरसी
गोबर-करसी
भदेस आचरण है इस देश में

संग्रहालय में बन्द हो गई हैं
लोक-कलाएँ
ऐसी स्थिति में
ईस्ट इण्डिया कम्पनी
यदि आ ही जाए
एक बार फिर से इस देश में–
तो क्या कर लेंगे आप
१८५७ अथवा १९४२ का
स्मरण करना ठीक होगा

मगर याद रखें
विद्रोह का आधार
भाषा और संस्कृति होती है–
जो आप भूलते जा रहे हैं.

■

## हिस्सा

सिर पर रोशनी के गमले
ढोता बाल मजदूर
खुद अन्धेरे में रेंगता है
और रोशनी की बाढ़ में
चुँधियाती अपनी आँखें बन्द कर
एक पल सोचता है–
इस रोशनी में
मेरे हिस्से की कितनी है...

■

सूर्यकांत द्विवेदी

काव्य और व्यंग्य लेखन के साथ धार्मिक आलेखों का अनेक समाचार-पत्रों में प्रकाशन. अमर उजाला समाचार-पत्र से २६ बरसों तक जुड़े रहे. सम्प्रति - स्थानीय सम्पादक, दैनिक हिन्दुस्तान, मेरठ.

सम्पर्क : dskantd@gmail.com

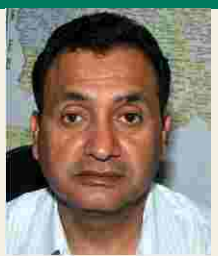



# टूट गए बंधन

आसमान के उस पार
एक संगीत था
एक स्वप्न था
एक आस थी
एक श्वांस थी

मेरे घर में दीप जले
कोई चहके, कोई महके
एक परीगगन से उतरे
सलोनी सी, प्यारी सी
परी उतरी गगन से
बाबुल के अंगने में
मानो, इच्छा को पंख लगे
मानो तृष्णा को तृप्ति मिली

चंदा सी, ध्वल चांदनी सी
सागर सी, ज्यों मोती सी
शशि सरीखी बढ़ने लगी
जवानी पग नापने लगी

देखते ही उसको थम जातीं
सांसे, दिल, और ठहर जाते नेत्र
दुनिया की नजरें दुश्मन लगने लगीं
फिल्मी तराने विष घोलने लगे
घर में सयानी बेटी है

इस दौर को क्या हुआ?
पिताजी से जब मैं
पापा हुआ, फिर डैड
लगा, हां बदल गया दौर
बाप और मेरा घर
आंखें तो आखिर आंखें हैं
स्वप्न तो आखिर स्वप्न हैं
रात में दिखते हैं
सुबह उखड़ते हैं
बेटी पराई हो जाएगी
आंगन सूना हो जाएगा

क्या इतने ही दिन बस
आंसुओं ने बंधन तोड़ दिए
आंखों का क्या कुसूर
दुनिया ने बंधन तोड़ दिए
अपनों ने बंधन खोल दिए
हां बेटी! हां बेटी!
वाह बेटी! आह बेटी!

■

**नीरज गोस्वामी**

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म. अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. पेशे से इंजीनियर. अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं. सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

*शायरी की बात*

# दे दिए आंसू हमें रूमाल भर

*ऐ खुदा रेत के सेहरा को समन्दर कर दे*
*या छलकती हुई आँखों को भी पत्थर कर दे*

बरसों से जब भी जगजीत सिंह की आवाज़ में ये ग़ज़ल उनके अल्बम 'ऐ साउंड अफेयर' को सुनता हूँ तो इसे बार-बार रीवाइंड कर सुनने को जी करता है. एक तो जगजीत जी की आवाज़ और उस पर ये जादुई अशार मुझे बैचैन कर देते हैं. इस खूबसूरत ग़ज़ल के शायर हैं जनाब 'डॉ. शाहिद मीर' साहब. आज उन्हीं की बेजोड़ किताब 'ऐ समंदर कभी उतर मुझ में' का जिक्र करेंगे. दरअसल इस किताब में मीर साहब के चुनिंदे कलामों का संपादन किया है श्री अनिल जैन जी ने. संपादन क्या किया है गागर में सागर भर दिया है.

पद्मश्री बेकल उत्साही साहब ने लिखा है 'हज़रत जिगर मुरादाबादी की खिदमत में रहता था तो वो बार-बार हिदायत करते बेटे, बहुत अच्छे इंसान बनो फिर बहुत अच्छे अशआर कहोगे. सच है कि अच्छा इंसान ही अच्छी सोच से अच्छी बातें करता है. शाहिद इस कसौटी पर खरे उतरते हैं. शाहिद मीर ने राजस्थान के तपते सहरा, मध्यप्रदेश की ऊबड़ खाबड़ ज़मीन पर रह कर किस कदर बुलंदियों को छुआ है जहाँ किसी फ़नकार और कलमकार को पहुँचने के लिए एक उम्र सऊबतें झेलकर भी पहुंचना मुश्किल है.

*सूखे गुलाब, सरसों के मुरझा गए हैं फूल*
*उनसे मिलने के सारे बहाने निकल गए*
*पहले तो हम बुझाते रहे अपने घर की आग*
*फिर बस्तियों में आग लगाने निकल गए*
*'शाहिद' हमारी आँखों का आया उसे ख़याल*
*जब सारे मोतियों के खज़ाने निकल गए*

एम.एससी, पी.एच.डी. (औषधीय वनस्पति) किये हुए शाहिद मीर बाड़मेर राजस्थान के राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय में उप प्राचार्य के पद पर काम कर रहे हैं. आपकी 'मौसम ज़र्द गुलाबों का' ग़ज़ल संग्रह, 'कल्प वृक्ष' हिंदी काव्य संग्रह और 'साज़िना' कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं.

*तेरा मेरा नाम लिखा था जिन पर तूने बचपन में*
*उन पेड़ों से आज भी तेरे हाथ की खुशबू आती है*
*जिस मिटटी पर मेरी माँ ने पैर धरे थे ऐ 'शाहिद'*
*उस मिट्टी से जन्नत के बागात की खुशबू आती है.*

उर्दू ज़बान की मिठास, कहने का निराला ढंग और सोच की नयी ऊँचाइयाँ आपको इस किताब को पढ़ते हुए जकड़ लेंगी. बशीर बद्र ने 'मीर' साहब के लिए ऐसे ही नहीं कहा कि 'कायनात के बहुत से रंग ज़र्द मौसमों और सुर्ख़ गुलाबों के पैकरों में हमारे सामने ब राहे-रास्त नहीं आते बल्कि उन खूबसूरत अल्फाज़ के शीशों में अपनी झलक दिखाते हैं, जिनमें शाहिद मीर ने खुद को तहलील कर रखा है.'

*कायनात के बहुत से रंग ज़र्द मौसमों और सुर्ख़ गुलाबों के पैकरों में हमारे सामने ब राहे-रास्त नहीं आते बल्कि उन खूबसूरत अल्फाज़ के शीशों में अपनी झलक दिखाते हैं, जिनमें शाहिद मीर ने खुद को तहलील कर रखा है.*

*चिलमन-सी मोतियों की अंधेरों पे डालकर*
*गुज़री है रात ओस सवेरों पे डालकर*
*शायद कोई परिंदा इधर भी उतर पड़े*
*देखें तो चंद दाने, मुंडेरों पे डालकर*
*आखिर तमाम सांप बिलों में समां गए*
*बदहालियों का ज़हर सपेरों पे डालकर*

९५ रु. मूल्य की इस किताब में १४९ ग़ज़लों को संग्रहित किया गया है. डायमंड बुक्स, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक फोन नं. ०११-४१६११८६१ या फेक्स नं. ०११-४१६११८६६ पर सूचित कर मंगाई जा सकती है अथवा उनकी वेब साईट www.dpb.in या मेल आई.डी. sales@diamondpublication.com पर लिख कर भी संपर्क किया जा सकता है.

*उजले मोती हमने मांगे थे किसी से थाल भर*
*और उसने दे दिए आंसू हमें रूमाल भर* ■

नीना पॉल

३० जून को अम्बाला में जन्म. लखनऊ विश्वविद्यालय से बी.ए, पंजाब विश्वविद्यालय से बी.एड, कानपुर विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए., बड़े उस्तादों से शास्त्रीय संगीत की शिक्षा. प्रकाशित कृतियां - कहानी संग्रह : अठखेलियां, कसक, फ़ासला एक हाथ का. उपन्यास : रिहाई, तलाश. ग़ज़ल संग्रह : नयामत, अंजुमन, चश्म-ए-ख़्वादीदा, मुलाकातों का सफ़र. ब्रिटेन के रेडियो व टेलिविज़न कार्यक्रमों में सक्रिय योगदान. भातखंडे सम्मान, लखनऊ से सुमित्रा कुमारी सिन्हा सम्मान तथा कथा यूके द्वारा पद्मानंद साहित्य सम्मान से सम्मानित.

सम्पर्क : 19 Rosedene Avenue, Thurmaston, Leicester LE4 8HR, UK Email: neenapaul@live.co.uk

कहानी

# दोहरा बंधन

देव के कदम तेज़ी से कार पार्क की ओर बढ़ रहे हैं. आज काम पर इतनी देर हो गई कि समय का कुछ पता ही नहीं चला. बेचारी ममा परेशान हो रही होंगी. उन्हें एक फ़ोन तक नहीं कर पाया.

'आज कस के डांट खाने के लिये तैयार हो जा बेटा देव'. स्वयं से बातें करते हुए उसने कार स्टार्ट कर दी. उधर कैथरीन से भी काम के बाद मिलने का वादा किया हुआ है. वह मुंह फुला कर बैठी होगी. ममा को मनाना तो बहुत आसान है मगर कैथी... उफ़. उसका गुस्सा तो इस समय जाने कौन से आसमान पर होगा. सोचते हुए देव जैसे ही घर के दरवाज़े पर पहुंचा तो सामने रेखा उसकी मां इंतज़ार में खड़ी मिली.

देव मुस्कुराते हुए प्यार से मां के गले लग गया

'ममा आप क्यों ऐसे दरवाज़े पर खड़ी रहती हैं, थक जाती होंगी?'

'हां, हां कितनी चिंता है मां की वह तो देख ही लिया है. सारा दिन एक फ़ोन करने की भी फ़ुरसत नहीं मिली तुझे रेखा बनावटी गुस्से से बोली.'

'क्या करुं, आज योरोप के कुछ क्लाईन्ट्स के साथ मीटिंग थी, बस उसी में थोड़ी देर हो गई. चलिये ना बहुत ज़ोर से भूख लगी है मां. मैं फ्रेश हो कर आता हूं आप जल्दी से खाना लगा दीजिये.' देव बच्चों की तरह मचलते हुए बोला.

कोई इन्सान कितना भी बड़ा क्यों ना हो जाए मां को देखते ही छोटा सा बच्चा बन जाता है.

'एक तो देर से आते हो और दूसरा घोड़े पे सवार हो कर', रेखा बड़े गर्व से बेटे को प्यार से देखते हुए बोली.

'जानती हैं मामा आज सारा दिन काम में इतना बिज़ी था कि चाय पीने का भी समय नहीं मिला?'

> *अब यही हमारा देश है जहां हम रहते हैं. आप सोचती हैं कि हम कभी इंडिया वापिस चले जायेंगे, नहीं. मैं यहीं पैदा हुआ हूं, यहीं कमाता खाता हूं और इसी देश की लड़की से शादी भी करूंगा.*

'तो क्यों करते हो इतना काम जो कुछ खाने पीने की भी सुध ना रहे. बीबी आ गई तो यह सब नहीं चलेगा. सोचती हूं कि अब रोज़ शाम को दरवाज़े पर खड़ी हो कर तुम्हारा इन्तज़ार करने वाली आ ही जानी चाहिये?'

'हां ममा अब कैथरीन मेरा इन्तज़ार करेगी या मुझसे करवायेगी यह तो समय ही जानता है?'

'कैथरीन?'

'जी ममा. क्या आप अभी तक नहीं समझीं. मैं और कैथी कितने पुराने दोस्त हैं.'

'हां जानती हूं बेटा कि तुम दोनों बहुत अच्छे दोस्त हो मगर शादी तो किसी अपनी कम्युनिटी की ही लड़की से करनी चाहिये ना?'

'वाह मां, ये कहां का इन्साफ़ है कि प्यार किसी से और शादी किसी और से. कैथरीन ने उस समय मेरा साथ दिया है

> वह सोचने लगी कि क्या अब बेटे का मुंह देखने को भी तरस जाया करेगी? पोते-पोतियों को गोद में खिलाने की हसरत ही रह जायेगी? भारत वापिस भी तो नहीं जा सकती. लोगों के ताने सुनने से तो अच्छा है कि यहीं इसी देश में घुट कर जितनी ज़िंदगी बची है काट ली जाये.

जब हम बहुत नाज़ुक दौर से गुज़र रहे थे. मेरे लिये उससे अच्छा जीवन साथी और कोई हो ही नहीं सकता. और फिर किसी लड़की से बिना मिले, बिना जाने इसलिये तो शादी नहीं कर सकता ना कि वह मेरी अपनी ही कम्युनिटी की है.'

'मगर बेटे कभी हम अपने देश जायेंगे तो वहां मैं क्या कहूंगी किसी को कि मेरा एक ही बेटा है और उसने भी अपनी मर्ज़ी से गोरी से शादी कर ली. लोग तानें मारेंगे तुम्हारी मां को.'

'क्यों ममा, जब हमारा उनकी किसी बात में इंटरफ़ियरेंस नहीं है तो फिर हम अपनी ज़िंदगी अपने तरीके से क्यों नहीं जी सकते. क्यों हम हमेशा इस बात से डरते रहते हैं कि हमारे रिश्तेदार क्या कहेंगे, जिनसे हम सालों के बाद मिलते हैं. अब आप इस गिल्ट से निकलिये ममा.'

'लेकिन बेटे मां के भी तो कुछ अरमान होते हैं ना. जब एक बेटा पैदा होता है तो मां-बाप उसे लेकर ना जाने क्या कुछ सपने देखने लगते है.'

'सपने बच्चे भी देखते हैं मां. क्या मुझे उन सपनों को पूरा करने का कोई हक नहीं जिनमें सिर्फ़ कैथी है. किसी और लड़की के बारे में तो मैं कुछ सोच भी नहीं सकता', देव की आवाज़ थोड़ी ऊंची हो गई.

'पर देव...'

'नहीं ममा, आप कब यह मानेंगी कि अब यही हमारा देश है जहां हम रहते हैं. आप सोचती हैं कि हम कभी इंडिया वापिस चले जायेंगे, नहीं. मैं यहीं पैदा हुआ हूं, यहीं कमाता खाता हूं और इसी देश की लड़की से शादी भी करूंगा.'

'लेकिन...'

'बस मां, दीदी की शादी का अन्जाम आपके सामने है. मुझे तो बेचारे जीजू पर तरस आता है. जिन्होंने दीदी को कितना प्यार दिया. अगर मेरी पत्नि ने ऐसा किया होता तो मैं अपने घर से ना निकलता बल्कि उन दोनों को धक्के दे कर घर से बाहर कर देता. वैसे भी आंखें मूंद कर आपकी पसंद की लड़की से शादी करके मैं जीजू की तरह अपनी ज़िंदगी बर्बाद नहीं कर सकता. मैं उसी से शादी करूंगा जिसे मैं बहुत सालों से जानता हूं.'

बेटे की बातें सुन कर रेखा का चेहरा एकदम उतर गया.

मां का उतरा हुआ चेहरा देख कर वह बोला- 'मुझे मालूम है इस समय यह बातें आपको बहुत कड़वी लग रही होंगी. लेकिन बिना सोचे-समझे और दबाव में आकर शादी करने से एक नहीं कितने ही ज़ीवन बर्बाद हो जाते हैं मां.'

'जो जीजू के साथ हुआ है ज़रूरी नहीं कि तुम्हारे साथ भी हो देव.'

'प्लीज़ ममा समझने की कोशिश करिये. इस बारे में मुझ पर ज़ोर मत डालियेगा. मेरा मकसद आपका दिल दुखाना नहीं. आप जानती हैं कि मैं आपसे बहुत प्यार करता हूं, परंतु मेरी ज़िंदगी मुझे मेरे तरीके से जीने दीजिये इसी में हम सबकी भलाई है. मैंने और कैथी ने जल्दी ही शादी करने का फ़ैसला कर लिया है.'

'फैसला जब तुम लोगों ने कर ही लिया है तो मैं कौन होती हूं कुछ बोलने वाली.'

बोला तो देव जिसे सुन कर रेखा को एक और झटका लगा 'और हां ममा जैसे ही हमारी शादी की तारीख पक्की हो जायेगी हम आपको बता देंगे.'

अब अपने ही बेटे की शादी की तारीख पक्की करने में उसकी सलाह की भी किसी को ज़रूरत नहीं रही.

मेरी सलाह की ज़रूरत तो इसके पापा को भी कभी महसूस नहीं हुई थी. अगर मानी होती तो विनी का यह हाल ना होता. आज फिर एक बार बोलने से पहले ही रेखा की ज़ुबान को बंद कर दिया गया था. आगे देव से क्या बातें हुईं उसे कुछ भी याद नहीं. बस एक ही बात उसके दिल पर हथौड़े मारती रही.

'दीदी की शादी का अन्जाम आपके सामने है.'

दीदी, हां देव की बड़ी बहन विनी. छोटी सी विनी जब अपनी तोतली आवाज़ में अंग्रेज़ी बोलती तो उसके पापा अतुल की आंखों में एक अजीब सी चमक आ जाती. वह बेटी को अंग्रेज़ी बोलने के लिये और प्रोत्साहित करते. रेखा कुछ विरोध करे उससे पहले ही उसे डांट कर चुप करा दिया जाता था. बेटी तोतली आवाज़ में अंग्रेज़ी कविताएँ सुनाती तो उन्हें बहुत अच्छा लगता.

अच्छा क्यों ना लगता. अतुल जब भारत छोड़ कर ब्रिटेन आए थे तो उस समय यहां का वातावरण कुछ और ही था. अंग्रेज़ लोग एशियंस को हीनता की नज़रों से देखते थे. उनके हिन्दुस्तानी एकसेंट से अंग्रेज़ी बोलने पर मज़ाक उड़ाया जाता था. गोरों को यह भी डर था कि हिन्दुस्तानी लोग मेहनती होते हैं. ये हमसे हमारी नौकरियां छीन लेंगे. इतना पढ़े लिखे हो कर भी अतुल ने इस देश में बहुत कुछ सहा.

सहा तो रेखा ने भी परंतु ख़ामोशी से. सारा दिन फ़ैक्ट्री में काम करने के बाद आते ही वह किचन में लग जाती. एक पल का भी आराम नहीं था उसे. बच्चों के स्कूल की पढ़ाई

चाहे मुफ़्त थी लेकिन ऊपर के ख़र्चे भी तो बहुत थे. रेखा रात को बिस्तर पर लेटती तो डर से कराह भी नहीं सकती थी कि कहीं अतुल के कानों में आवाज़ न पड़ जाये. यही कारण था कि उनके बच्चे जब अंग्रेज़ी एक्सेंट से इंगलिश बोलते तो उन्हें यह सोच कर ख़ुशी होती कि हमारे बच्चे भी अंग्रेज़ बच्चों से कम नहीं हैं. वह तो यही चाहते थे कि जो पीड़ा उन्होंने सही है उनके बच्चे उस से दूर रहें. वह दूर ज़रूर हो गये मगर अपनी भारतीय संस्कृति से.

भारतीय संस्कृति जो बच्चों के लिये किताबों तक रह गई थी. बेटी विनी तो हर प्रकार से अंग्रेज़ी रंग में रंग चुकी थी. क्लबों में जाना, रात देर तक घर से बाहर रहना. मां रोकती तो कड़ा जवाब मिल जाता.

'मां, आइ एम नोट ए चाईल्ड. आई कैन लुकआफ़टर माई सैल्फ़.'

हां वह अपना कैसा लुकआफ़टर कर रही है यह तो मां को अपने सामने ही नज़र आ रहा है. विदेशी संस्कृति ने बच्चों को यह शिक्षा ज़रूर दी है कि अपने से बड़ों को कैसे जवाब दिया जाये. जब अपना ही बच्चा मां-बाप से यह कह दे कि 'कितने साल हो गये आप को इंडिया से यहां आए लेकिन अभी भी आप वहीं के दकियानूसी उसूल, संस्कार जाने क्या-क्या ले कर चल रहे हैं. प्लीज़ हमें इन दो देशों के दोहरे बंधन में मत बांधिये. आप भी थोड़ा आगे बढ़िये और हमें भी हमारी ज़िंदगी अपने तरीके से जीने दीजिये.' उस समय ख़ामोशी से बच्चों का मुंह देखने के सिवाए कोई और चारा भी तो नहीं होता.

मुंह दिखाने के डर से ही तो अतुल चाह कर भी कभी वापस इंडिया नहीं जा पाए. उनके समान और भी सैंकड़ों परिवार अपने ही बच्चों के सामने हार मान चुके थे. एक मां हर मुश्किल का डट के सामना कर सकती है परंतु अपने पेट के जायों के सामने ख़ामोश हो जाने के लिये मजबूर हो जाती है. इसके लिये कौन किसको दोष दे.

दोष तो सारा विनी का भी नहीं था. यह रास्ता भी उसे अपनों ने ही दिखाया था. अब वह अंग्रेज़ी बोलती ही नहीं थी बल्कि अंग्रेज़ों के तौर-तरीके और रंग-ढंग भी अपना रही थी. रेखा का दिल किसी अन्जाने डर से कांप उठता मगर यह उसकी मजबूरी समझो या पति से विरोध का डर जो वह बेटी के भटकते कदम ना रोक सकी.

> *विनी कई बार रातों को भी घर से बाहर रहने लगी थी. हमारे भारतीय संस्कार जिसे पाप समझते हैं वो यहां का मॉडर्न कल्चर माना जाता है. जो रेखा के अपने बच्चे बाख़ूबी अपना रहे थे.*

'ममा मैं दोस्तों के साथ जा रही हूं आने में देर हो जाएगी.'

'विनी बेटे तुम्हारे सारे ही अंग्रेज़ दोस्त हैं. एक भी बीच में इन्डियन होता तो मुझे तसल्ली रहती.' रेखा ने थोड़ा परेशान हो कर कहा.

'ओह ममा प्लीज़ अब फिर से शुरू मत हो जाना.'

बाप के समान बेटी भी ज़ुबान खुलने से पहले ही रेखा को चुप करा देती.

चुप होने के स्थान पर काश उस समय रेखा ने इस बात का विरोध किया होता तो शायद बेटी के घर से बाहर उठते कदमों पर कुछ अंकुश लगा पाती. कई बार अपनी ही खामोशी मजबूरी बन कर स्वयं पर भारी साबित हो जाती है.

यह रेखा की मजबूरी ही तो थी जो बेटी को पतन में गिरने से रोक ना सकी. विनी कई बार रातों को भी घर से बाहर रहने लगी थी. हमारे भारतीय संस्कार जिसे पाप समझते हैं वो यहां का मॉडर्न कल्चर माना जाता है. जो रेखा के अपने बच्चे बाख़ूबी अपना रहे थे.

अपनाया तो हमें इस देश ने उस दौलत से, जिसने अपने ही बच्चों के सामने हमारे मुंह पर ताले लगा दिये. माना इस देश में रह कर हमने बहुत धन दौलत कमाई है. उस धन दौलत ने हमें दिया क्या, अकेलापन. जो जीवन का सबसे बड़ा श्राप है. जब औलाद होने पर भी कोई अकेला हो. बीमार होने पर कोई पानी देने वाला ना हो तो इससे बड़ा अभिशाप और क्या हो सकता है. जब देखते ही देखते बच्चे बड़े हो जाते हैं तो कितनी ही उम्मीदें मां-बाप के दिलों में उमंगें लेने लगती हैं.

उम्मीद तो आज एक बार फिर रेखा की टूटी थी. कैसे अपना ही बच्चा यह कह कर चल दिया कि शादी की तारीख पक्की हो जाने पर आपको बता दिया जायेगा. जैसे मैं उसकी मां नहीं शादी में आने वाली एक मेहमान हूं.

मेहमानों से तो उस दिन घर भरा हुआ था. कितने खुश थे सब लोग. अतुल हीथ्रो एयरपोर्ट गये हुए थे अपने दोस्त प्रमोद और उसके परिवार को लेने के लिये. दोनों दोस्त अब रिश्तेदार जो बनने वाले थे. विनी भी उत्सुक थी संयम. अपने होने वाले पति से मिलने के लिए. वैसे संयम उसके लिये अन्जान नहीं था. वह देखना चाहती थी कि गोल मटोल सा संयम डॉक्टर बन के कैसा लगता है.

भई अच्छा क्यों नहीं लगता. पढ़ा लिखा अट्ठाईस साल का बांका गबरू जवान है संयम.

शादी के बाद विनी को संयम के साथ इतना खुश देख कर दोस्तों को कुछ जलन सी महसूस हुई. जो विनी दिन रात उनके साथ रहती थी, उन पे पैसा लुटाती थी. उसे वह इतनी आसानी से कैसे जाने देते. उन्होंने उसे हिंदुस्तानी दुल्हन कह

कर चिढ़ाना शुरू कर दिया. विनी जिसने सदैव स्वयं को अंग्रेज़ समझा, वह अपने लिये हिन्दुस्तानी शब्द कैसे सहन कर सकती थी और वह भी अंग्रेज़ दोस्तों के सामने. साबित करने के लिये उसने फिर से क्लबों में आना-जाना शुरू कर दिया. बस दोस्त यही तो चाहते थे.

दोस्तों के चाहने का ख़्याल ना करके यदि विनी ने अपने पति का ख़्याल किया होता तो शायद उसके लड़खड़ाते कदमों को सहारा मिल जाता. कोई अगर मज़बूत हो तो किसी की क्या मजाल जो उसे अपने इरादों से हिला सके. विनी तो शुरू से ही कनफ़्यूस्ड लड़की थी जो दो संस्कृतियों के झूले में झूल रही थी. उसने सोचा कि वह संयम को भी अपने रंग में रंग लेगी.

कुछ रंग इतने पक्के होते हैं कि उन पर आसानी से कोई और रंग नहीं चढ़ सकता. शायद संयम बहुत भावुक इन्सान था. वह नया-नया भारत से आया था. अभी उस पर यहां के तौर तरीकों का कुछ प्रभाव नहीं हुआ था. संयम ने सोचा कि धीरे-धीरे अपने प्यार से वह पत्नी को भी बदलने की कोशिश करेगा. वह अपने अतुल अंकल से बहुत प्यार करता था. नहीं चाहता था कि उसके कारण घर में किसी को भी किसी प्रकार की तकलीफ़ हो. शायद विनी ने उसकी इसी कमज़ोरी का फ़ायदा उठाया था.

फ़ायदा उठाना कभी दूसरों के साथ-साथ स्वयं पर भी भारी पड़ जाता है. संयम सारे दिन का थका हुआ घर आया तो देखता है कि विनी कहीं जाने के लिये तैयार हो रही है.

'हज़ूर की सवारी कहां जाने के लिये तैयार हो रही है.' संयम ने छेड़ते हुए प्यार से पूछा.

'मैं क्लब जा रही हूं.' विनी बेरुख़ी से बोली.

उसकी बेरुख़ी को नज़र अंदाज़ करके संयम ने बाहें विनी की कमर में डाल कर कहा - 'भई हमने तो सोचा था आज की शाम हम अपनी ख़ूबसूरत पत्नी के साथ बिताएँगे. आज मैं बहुत थका हुआ हूं विनी...' इससे पहले कि उसकी बात पूरी होती विनी बेरुखी से उसका हाथ झटक कर बोली -

'थके हुए हो तो जा कर सो जाओ. मैं कोई सोलहवीं सदी की पतिव्रता स्त्री तो हूं नहीं जो रोज़ शाम को घर बैठ कर पति की सेवा करूंगी. अगर तुम्हें सही मायनों में अपनी थकावट मिटानी है तो तुम भी चलो मेरे साथ क्लब.'

संयम अभी यहां के रंग ढंग से दूर ही था. वह चुपचाप दूसरे कमरे में चला गया.

उस रात तो विनी ने हद ही कर दी थी. बताना मुश्किल था कि विनी ने कुछ खोया या संयम का संयम टूटा. आधी रात को नशे में चूर विनी अपने एक शराबी अंग्रेज़ दोस्त के साथ घर आती है.

घर के बाहर कार रुकने की आवाज़ सुन कर संयम ने जैसे ही दरवाज़ा खोला उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ. आज विनी ने विवाहित जीवन की हर हद को पार कर दिया था. वह शराब के नशे में धुत, अपने दोस्त के बदन से चिपकी उसका चुम्बन ले रही थी. दरवाज़ा खुलने की आहट सुन कर भी वह अलग नहीं हुए. संयम ही इस शर्मनाक दृश्य को और ना देख सका और पलकें झुका कर अंदर कमरे में चला आया. एक ख़ुद्दार पति अपनी पत्नी को किसी परपुरुष की बाहों में कभी भी सहन नहीं कर सकता.

सहन तो विनी भी नहीं कर पा रही थी अपने नशे को. वह लड़खड़ाते कदमों से कमरे में आई.

कमरे मे आते ही संयम सोफ़े से उठते हुए बोले - 'विनी घड़ी देखी तुमने और इस समय ये कौन था तुम्हारे साथ.'

'मैं तुम्हारे हर सवाल का जवाब देना उचित नहीं समझती. अभी मुझे नींद आ रही है. तुम अपनी वकालत सुबह कर लेना.'

मैं सुबह तक का इंतज़ार नहीं कर सकता. 'देखो विनी मैं तुम्हारा पति हूं और इस तरह तुम्हे पतन में गिरते हुए नहीं देख सकता.' संयम आगे बढ़ते हुए प्यार से बोला.

'नहीं देख सकते तो चले जाओ अपने देश वापिस. तुम्हें रोका किसने है. तंग आ चुकी हूं मैं तुम्हारी रोज़-रोज़ की रोक-टोक से. इतना तो मेरे पापा ने भी मुझे कभी नहीं टोका था.' वह बेरुख़ी से बोली.

'काश. उन्होंने समय पर तुम्हें रोका होता तो तुम्हारा जीवन बर्बाद होने से बच जाता.'

'बर्बाद तो तुमने कर रखा है मेरे जीवन को. तुमसे शादी का मतलब यह नहीं कि मैं अपने दोस्तों को छोड़ दूं. और हां, इस समय मैं तुम्हारा भाषण सुनने के मूड में नहीं हूं समझे', वह लड़खड़ाते हुए बोली.

समझ तो संयम को नहीं आ रहा था कि वह क्या करे. इस तरह रात को वह कोई तमाशा खड़ा करना नहीं चाहता था. पति के होते हुए पत्नी आधी रात को नशे की हालत में किसी परपुरुष को घर ले कर आये. एक पति के लिये इस से ज़्यादा शर्मनाक बात कोई हो ही नहीं सकती. वैसे भी आज कल विनी की हरकतों से वह काफ़ी परेशान रहने लगा था. विनी बात-बात पर उससे झगड़ने का बहाना ढूंढ़ती रहती जो वह उसे नीचा दिखा सके. वह जब देखो कटाक्ष करती.

'तुम भारतीय कितने भी पढ़-लिख क्यों ना जाओ लेकिन रहोगे देहाती ही. आज ज़माना कितना तरक्की कर रहा है और तुम वही अपने पुराने उसूलों में भटक रहे हो. यहां हर कोई अपनी ज़िंदगी अपने तरीके से जीता है मिस्टर. मैं आज़ाद ख़्यालात की लड़की हूं. तुम मुझे बांध कर नहीं रख सकते.'

बंधा हुआ तो संयम था. एक तरफ़ अपनी पत्नि से और दूसरी ओर अपने विचारों से अपनी संस्कृति से. वह दोनों को ही नहीं छोड़ सकता था.

कभी दूसरों को खुश करने के चक्कर में इन्सान अपना सुख चैन खो देता है. संयम अभी तक पापा और अतुल अंकल की दोस्ती के कारण ख़ामोश था. उसे विश्वास था कि एक दिन विनी को भी इस बात का एहसास हो जायेगा कि वह किसी की ब्याहता पत्नी है. मगर नहीं, वह कितना ग़लत था. विनी बहुत आगे निकल चुकी थी. उसमें सुधरने के कोई लक्षण ही दिखाई नहीं दे रहे थे. आज तो संयम के संयम ने भी उससे बेवफ़ाई कर दी. वह और अपमान ना सह सका. उस ने बिना किसी से एक शब्द बोले उसी समय हमेशा के लिये घर छोड़ दिया.

संयम ने तो घर छोड़ा मगर अतुल यह दुख ना सह सके. उन्होंने जहान ही छोड़ दिया. जिस दिन उन्होंने बेटी की शादी की बात सोची थी कितना ख़ुश थे.

'रेखा ये प्रमोद का बेटा संयम कैसा रहेगा हमारी विनी के लिये.' अतुल ने पत्नी से पूछा.

'संयम तो बहुत अच्छा लड़का है लेकिन क्या हमारी विनी वापस भारत जाने के लिये तैयार हो जायेगी.'

'अरे उसे जाने की क्या ज़रूरत है. हम संयम को यहां बुला लेंगे. वह डॉक्टर है. उसे तो यहां किसी भी हास्पिटल में फौरन नौकरी मिल जायेगी.'

'नौकरी तो मिल जायेगी परंतु सोच लीजिये. आप विनी की चाल-ढाल तो देख ही रहे हैं. फिर प्रमोद भाई साहब मानेंगे बेटे को इतनी दूर भेजने के लिये? सबसे बड़ी बात तो यह है कि संयम भारतीय संस्कृति में पला बड़ा है. क्या वह दोनों एक-दूसरे के साथ एडजस्ट कर पाएँगे.'

'तुम औरतें तो यूं ही चिंता करती हो. देखना शादी के बाद हमारी विनी भी बदल जाएगी. आख़िर वह मेरी बेटी है. हमें अपने बच्चों पर भरोसा करना चाहिये.'

इस भरोसे के भरोसे ही तो इन्सान क्या कुछ सोच लेता है. बस अतुल को यही ग़म ले गया कि प्रमोद ने आंखें मूंद कर यारी निभाई मगर मैंने तोड़ दिया यार का भरोसा. अपने ही दोस्त के साथ धोखा किया है. बस इसी ग़म के साथ उन्होंने पत्नी को छोड़ मौत को सीने से लगा लिया. रेखा ने पति को तो खोया ही वह बेटी से भी हमेशा के लिये दूर हो गई.

> *विनी बहुत आगे निकल चुकी थी. उसमें सुधरने के कोई लक्षण ही दिखाई नहीं दे रहे थे. आज तो संयम के संयम ने भी उससे बेवफ़ाई कर दी. वह और अपमान ना सह सका.*

अब बेटे से दूर होने का डर उसे सता रहा था. जब अपने पेट की जाई हुई अपनी नहीं रही तो कैथी तो पराई है. अंग्रेज़ है. बिल्कुल अलग माहौल में पली हुई. जब अपने ही बच्चे अपने ना रहे तो दूसरों से क्या उम्मीद की जा सकती है.

किसी उम्मीद के टूटने से कितना दर्द होता है यह रेखा से अधिक और कौन जान सकता है. वह सोचने लगी कि क्या अब बेटे का मुंह देखने को भी तरस जाया करेगी? पोते-पोतियों को गोद में खिलाने की हसरत ही रह जायेगी? भारत वापिस भी तो नहीं जा सकती. लोगों के ताने सुनने से तो अच्छा है कि यहीं इसी देश में घुट कर जितनी ज़िंदगी बची है काट ली जाये.

हां वह ज़िंदगी ही तो काट रही है जब से यहां आई है एक के बाद एक बज्रपात सह कर. जब ख़ुशी से ज़्यादा ग़म मिलें तो उनको सहते हुए इन्सान दर्द का दर्द भी भूल जाता है. पहले देश छूटा फिर पति अब बारी-बारी से बच्चे भी अपना रंग दिखा कर दूर होते जा रहे हैं.

अभी जो हो रहा था वह क्या कम था कि बेटे ने एक और झटका दे दिया. 'ममा आप तो जानती हैं कि कैथरीन मां बाप की एकलौती सन्तान है. कैथी की ममा चाहती हैं कि हमारी शादी चर्च में हो. आपको कोई एतराज़ तो नहीं.'

'एतराज़.' रेखा हैरान हो कर बोली. 'कैथरीन एक कैथोलिक लड़की है. कैथोलिक चर्च में शादी करने का मतलब जानते हो देव. तुम्हे भी हिन्दू धर्म छोड़ कर कैथोलिक बनना पड़ेगा तभी तुम्हारी शादी उस चर्च में सम्पन्न हो पायेगी. इसका मतलब तुम कैथरीन के लिये अपना धर्म भी छोड़ दोगे.'

'ममा आप जानती हैं कि मैं धर्म-वर्म को नहीं मानता. मैं एक इन्सान हूं और इंसानियत ही मेरा धर्म है. फिर कैथोलिक बनूं या हिंदू रहूं क्या फ़र्क पड़ता है ममा, रहूंगा तो आपका बेटा ही ना.'

अब बेटे भी कब तक रहोगे पता नहीं. रेखा ने अपने उमड़ते हुए आंसुओं को पी लिया.

'जब तुमने ठान ही ली है तो एतराज़ करके होगा भी क्या बेटा. शादी तुम्हारी है. जैसा ठीक समझो करो.' रेखा अपनी उदासी छुपाते हुए बोली.

उदासी बेटे ने तो नहीं देखी हां कैथी की नज़र से ना छुप सकी. उसे दोनों के वार्तालाप की भाषा तो ज़्यादा समझ नहीं आई क्योंकि बातें आधी इंगलिश और आधी हिंदी में हो रहीं थीं. फिर भी जो उसे समझना था वह समझ गई.

समझ तो देव नहीं पाया कैथी की बात को. देव कार में

बैठने लगा तो कैथी बोली- 'देव, मैं सोचती हूं कि हम पहले मन्दिर में शादी करेंगे फिर चर्च में.'

'आर यू मैड कैथी.' प्लीज़ तुम कम ही सोचा करो तो अच्छा है. पहले ही हम बजट से ज़्यादा ख़र्च कर रहे हैं और उस पर दूसरी शादी का ख़र्चा. यह तुम्हारे दिमाग में आया भी कैसे. फिर जब ममा को सब कुछ मंज़ूर है, तुमने देखा कि उन्होंने किसी बात पर भी ऐतराज़ नहीं जताया तो फिर ये सब किसलिये.'

'मंज़ूर है इसीलिये तो...' कैथी कुछ सोचते हुए बोली - 'तुम औरतों को समझना बहुत मुश्किल है...' कैथी ने अपने एक सेंट से वाक्य पूरा कर दिया तो देव मुंह बना कर रह गये.

कैथरीन को रंग-बिरंगी लहंगा चोली में दुल्हन के रूप में सजा देख कर देव मुंह बनाना भूल गये. यह कहना मुश्किल था कि वह भारतीय लिबास में दुल्हन बनीं ज़्यादा सुंदर लग रही थी या चर्च में सफ़ेद गाऊन में लिपटी हुई. दुल्हन किसी भी जाति या धर्म की क्यों ना हो शादी के समय तो रूप निखर ही आता है.

शादी हो जाने के बाद देव और कैथी के कहने पर भी रेखा ने अपनी नौकरी नहीं छोड़ी.

उसने सोचा अगर मैं काम नहीं करूंगी तो इतना लम्बा समय कैसे व्यतीत कर पाऊंगी. देव और कैथी भी कुछ समय बाद अपने नए घर में चले गये थे. अब तो रेखा ने अकेले रहने की आदत भी डाल ली थी. फिर भी वह एक मां है. बच्चों के इंतज़ार में कान हर समय दरवाज़े पर ही लगे रहते.

दरवाज़े से अंदर आते हुए कैथी कुछ झुंझला कर बनावटी गुस्से से बोली 'जल्दी करो देव तुम तो मैथयू से भी छोटे हो. तैयार होने में इतनी देर करते हो.'

'अरे ममा के घर ही तो जाना है.' देव जैकेट पहनते हुए बोले.

'हां तो ममा के घर भी समय से पहुंचना चाहिये जनाब. जानते नहीं कि आज दीवाली है. माम बेचारी अकेले ही सारा काम कर रही होंगी.'

'तो वहां जाकर भी तुम कौन सा काम करने वाली हो.' देव ने छेड़ते हुए कहा.

'आपकी तरह नहीं कि वहां पहुंचते ही छोटे बच्चे की तरह टी.वी. के सामने पसर जाओ और ममा पे हुक्म चलाने लगो, ममा एक कप चाय मिलेगी प्लीज़.'

'अरे हां चाय से याद आया इस बार तुम ममा से अच्छी चाय बनाना ज़रूर सीख लेना', कैथी ने तकिया उठा कर ज़ोर से देव की ओर फ़ेंका जिसे हंसते हुए देव ने रास्ते में ही रोक लिया. जब भी ममा के घर जाना होता कैथी और देव की पहले से ही छेड़छाड़ शुरू हो जाती.

छेड़छाड़ का मज़ा तो रेखा भी भरपूर लेती जब बच्चे घर पर होते. वह हमेशा बहू का साथ देती तो देव चिढ़ जाता. रेखा वैसे तो दीवाली की तैयारियों में बिज़ी है मगर कान दरवाज़े पर पोते की आवाज़ सुनने के लिये लगे हुए हैं.

'दादी मां' बाहर से ही मैथ्यू की आवाज़ आई तो रेखा लपक कर दरवाज़े की ओर बढ़ी. घर तरह तरह के पकवान व सुगंधों से भरा हुआ था.

हैपी दीवाली ममा.

'बड़ी देर करदी बच्चो.' रेखा प्यार से बोली.

'इटस डैडी.' दादी मां.

'तुम्हारे डैडी तो हैं ही लेज़ी.'

'यैह.' मैथ्यू ताली बजा कर डैडी को चिढ़ाते हुए बोला तो देव उसके पीछे भागने लगे मारने के लिये. बच्चे यही तो चाहते हैं.

'अरे भई इतनी अच्छी ख़ुशबुएँ आ रही हैं. मेरी तो भूख तेज़ हो रही है. चलो ममा जल्दी से पूजा की थाली तैयार करें.' कैथी रेखा को रसोई घर की ओर ले जाते हुए बोली.

'जानती हूं खाना देख कर तुम लोग सब कुछ भूल जाते हो.' रेखा हंसते हुए पूजा की थाली सजाने लगी तो कैथी उनके हाथ से थाली ले कर बोली-

'ममा आज थाली मैं सजाऊंगी.' आप मुझे बताईये क्या क्या रखना है. कैथी ने रेखा की सहायता से एक बड़ी सी थाली में रंगबिरंगी रंगोली भी बनाई. रंगोली देख कर मैथ्यू भी उसमें और रंग भरने लगा. बच्चों को तो वैसे भी रंगबिरंगी चीज़ें आकर्षित करती हैं.

आकर्षित तो कैथी को दूर पड़ी मिठाई कर रही थी. रेखा किचन से पटाके और मिठाई ले कर आई तो कमरे में बहू कहीं दिखाई नहीं दी. 'अरे यह कैथी कहां चली गई. अभी तो उसे बड़ी ज़ोर से भूख लगी हुई थी.'

'उसकी मत पूछो ममा, उसे तो यहां आते ही भूख लग जाती है.'

'मैं सब सुन रही हूं आप ममा से मेरी जो भी शिकायत कर रहे हैं.' कमप्यूटर रूम से कैथी बोली जहां से संगीत की आवाज़ आ रही थी.

'ममा आरती शुरू होने वाली है जल्दी से पूजा के लिये तैयार हो जाईये और हां, आज पूजा मैं करुंगी.'

'तुम कैसे करोगी. नहीं, नहीं पूजा ममा को करने दो. तुम्हें नहीं आती करनी.' देव जल्दी से बोले.

'अरे भई नहीं आती तो मैं सिखा दूंगी. पूजा घर की बहू ही करती है बेटा.'

कैथी ने देव को जीभ दिखा कर पूजा की थाली अपने हाथ में ले ली और पास ही सोफ़े पे रखे स्कार्फ़ से अपना सिर ढंक कर जैसे-जैसे ममा ने बताया बड़ी लगन से वह पूजा करने लगी.

इतने में दूसरे कमरे से कम्प्यूटर पर संगीत के साथ ओम जय जगदीश हरे, आरती शुरू हो गई. कैथी भी अपने अंग्रेज़ी एक्सेंट में आरती के साथ स्वर से स्वर मिला कर गाने लगी. देव मुस्कुराते हुए ख़ामोशी से ताली बजा रहे थे.■

डॉ. हरि जोशी

१७ नवंबर १९४३ को खूदिया, तहसील खिरकिया, जिला हरदा, मध्यप्रदेश में जन्म. एम.टेक, पी.एच-डी. प्राध्यापक मैकेनिकल इंजीनियरिंग. हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के अलावा अंग्रेजी की अमेरिकन पत्रिका 'दी रिफाइन्ड सेवेज पोइट्री रिव्यू' में कविताएँ प्रकाशित. आकाशवाणी, दूरदर्शन, बीबीसी तथा अमेरिका मे आस्टिन टीवी पर कविता पाठ. अमेरिका तथा इंग्लैंड की अनेकों यात्राएँ. प्रमुख कृतियाँ : कविता संग्रह - पंखुरिया और यंत्रयुग. व्यंग्य संग्रह - अखाड़ों का देश, रिहर्सल जारी है, व्यंग्य के रंग, आशा है सानंद हैं, पैसे को कैसे लुढका ले, आदमी अठन्नी रह गया. उपन्यास- पगडंडियां, महागुरू, वर्दी और टोपी टाइम्स. मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'व्यंग्य के रंग' पर 'वागीश्वरी सम्मान' से सम्मानित.

सम्पर्क : ३-३२ छत्रसाल नगर, फेज-२, जे.के.रोड, भोपाल. ईमेल : harijoshi2001@yahoo.com

व्यंग्य

# मुझे नहीं भाया अमेरिका

एक कारण हो तो बताऊं कि मुझे अमेरिका क्यों पसंद नहीं? सबसे बड़ा कारण तो यह है कि वहां थूकने की स्वाधीनता बिलकुल नहीं है. मुझे आश्चर्य है वह कैसा प्रजातांत्रिक देश है? हमारे यहां पान गुटका तम्बाखू खाने वाले तो यत्र-तत्र थूकते ही हैं, परस्पर मतभेद रखने वालों के लिए भी थूकना अभिव्यक्ति का कितना शक्तिशाली माध्यम है. थूक लेने के बाद मन को कितनी शांति मिलती है, व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है. सभी राजनीतिक दल जानते हैं विरोधी दलों पर थूकना प्रजातांत्रिक अधिकारों के अंतर्गत आता है. अमेरिकी नासमझ इस छोटी-सी बात को क्या जानें? बंकर में छुपे हुए सद्दाम हुसैन को भी जब पहली बार अमेरिकी सैनिकों ने इराक में पकड़ा था तो उसने भी मात्र थूककर गुस्से को अभिव्यक्ति दी थी.

मात्र थूक देना भी अर्थ रखता है. किसी के ऊपर थूकने से पहले देखें, क्या इस पुनीत कार्य के लिए सही व्यक्ति को ही हम चुन रहे हैं? उस पर थूकना है, उसे दिखाकर थूकना है या मात्र थू कहना है. देखते ही थूकें फिर उसे देखें. नज़ारा मनोहारी हो सकता है. थूक देना भी एक प्रभावी शस्त्र है जिसका उपयोग बहुत सावधानी से करने की आवश्यकता है. गलत स्थान पर थूक देने से व्यक्ति पिट सकता है. इसीलिए जहां थूकें सोच समझकर थूकें. गंभीरतापूर्वक विचार करें, क्या वहीं थूकना ज़रूरी है? या इस युद्धोन्मुखी प्रक्रिया को टाला जा सकता है? मंत्रियों के आसपास अंगरक्षकों से अधिक थूकरक्षक होने चाहिए. प्रतिपक्ष का जो नेता सत्तापक्ष पर या सत्तापक्ष का जो नेता प्रतिपक्ष पर, अधिक से अधिक थूक सकता है, टिकिट पाने का वह उतना ही मज़बूत दावेदार बन जाता है.

> *यहां टिकिट मिलता है तो व्यक्ति की चुनाव यात्रा, विमान यात्रा, बस या रेल यात्रा हो जाती है किन्तु वहां टिकिट मिलता है तो व्यक्ति की अदालत यात्रा या जेल यात्रा हो जाती है.*

यदि अमेरिका में सड़क पर कोई थूक दे तो उसे भी टिकिट की सुविधा मिल जाती है. बस यहां के टिकिट और वहां के टिकिट में थोड़ा अंतर है. यहां टिकिट मिलता है तो व्यक्ति की चुनाव यात्रा, विमान यात्रा, बस या रेल यात्रा हो जाती है किन्तु वहां टिकिट मिलता है तो व्यक्ति की अदालत यात्रा या जेल यात्रा हो जाती है. यहां का टिकिट सुविधायुक्त जबकि वहां का टिकिट अभियुक्त बनाता है. यहां का टिकिट घमंड जबकि वहां का टिकिट दंड देता है. कई परंपराएं वहां ऐसी हैं जिन पर थूकने की भी इच्छा नहीं होती, किन्तु गलती से भी कहीं थूक दिया कि कॉप याने पुलिस के घेरे में आ गए. पर जहां किसी प्रकार की थू-थू ही न हो वह भी कोई रहने योग्य

स्थान है? मेरी हो या तेरी हो, थू-थू तो होना चाहिए. उसके बिना जीवन नीरस नहीं हो जाएगा. मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही, हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए. दुष्यंत कुमार ने भले ही न सोचा होगा किन्तु इन पंक्तियों के पीछे, थू-थू करने कराने का ही आशय रहा होगा. बात का सार संक्षेप यह कि जिस देश में हम थूक नहीं सकते, थू-थू नहीं कर सकते वहां रहने में क्या आनंद. राजा महाराजाओं के ज़माने में पीकदान हुआ करते थे, इन दिनों समूचा हिन्दुस्तान ही यहां के सुयोग्य नागरिकों के सहयोग से पीकदान बन चुका है.

थूकने के मामले में अपना देश सचमुच स्वर्ग है, कहीं भी दिल खोलकर थूको. चाहे जिस पर थूको, जितना मर्जी में आए उतना थूको. बस उसके बाद वाली स्थिति से निपटने के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक मजबूती हो. अमेरिका में कहीं भी थूकेंगे तो पुलिस हाथ दिखायेगी, हिन्दुस्तान में किसी पर थूकोगे तो ही सामने वाला हाथापायी करेगा.

अमेरिका के अधिकांश मध्यमवर्गीय परिवार नाव रखते हैं, शनिवार, रविवार आदि छुट्टी के दिनों में ट्राली पर रखकर सुबह से ही पास की नदी या झील में डाल देते हैं, फिर दिन भर पानी के बीच सैर या मस्ती का आनंद लेते रहते हैं. पानी से खेलना वहां के लोगों का शौक है. वे क्या जाने आग से खेलना यहां के लोगों की तो मजबूरी थी, अब भले ही शौक बन गया है. यहां के लोग यदि पानी से खेलने लगें तो उनका पानी मर जाए, वे स्वयं भूखे मर जाएं. यहां तो मात्र सत्ताधीश ही पानीदार रह सकते हैं. कर्णधारों ने तो समाज पर पानी फेर दिया और नागरिकों को लहरें गिनने के काम में लगा दिया. भारतीय मतदाता इसीलिए तो पानी पी पीकर कभी इन्हें, कभी उन्हें कोसता रहता है इसके अलावा वह और क्या कर सकता है? वैसे पानी से खेलना भी कोई काम है? भारतीय बच्चे ही बरसात के दिनों में पानी में खेलते रहते हैं. जो काम यहां के बच्चे कर लेते हैं, वह काम वहां के बड़े बूढ़े लोग करते हैं. यह पक्का है वे आग से नहीं खेल सकते. इस तरह बच्चों जैसे काम करते हैं, इसीलिए अमेरिका मुझे पसंद नहीं. वहां बच्चों के स्कूल के पास वाली सड़क से पंद्रह मील प्रति घंटे से अधिक की गति से किसी वाहन के निकलते ही वाहन चालक को टिकिट थमा दिया जाता है. सड़क पर किसी का पांव भी आ जाए तो कार वाला पचास फीट दूर कार खड़ी कर देता है. यहां तो कोई बच्चा या बूढ़ा बीच में गलती से आ जाए तो ७०-८० मील प्रति घंटे की गति से कुचलते हुए भाग जाने की स्वाधीनता है. बच्चे या बूढ़े ने सड़क का नियम क्यों तोड़ा? भारतीय प्रजातंत्र पद्धति में मटरगश्ती या अपराध करने की जो स्वतंत्रता है वैसी अमेरिका में कहां. इसीलिए अमेरिका मुझे पसंद नहीं.

> *थूकने के मामले में अपना देश सचमुच स्वर्ग है, कहीं भी दिल खोलकर थूको. चाहे जिस पर थूको, जितना मर्जी में आए उतना थूको. बस उसके बाद वाली स्थिति से निपटने के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक मजबूती हो.*



वहां हॉर्न बजाना ही गाली देना माना जाता है. व्यस्त सड़कों पर घंटों यात्रा कर लाजिए, हार्न की एक भी आवाज़ सुनने को नहीं मिलेगी. यदि दो कारें समानान्तर दौड़ रही हैं और किसी एक ने दूसरे को ओव्हरटेक करने याने आगे जाने के लिए रास्ता दे दिया है, तो दूसरा व्यक्ति पहले को थैंक्स कहता ही है. यहां पर ओव्हरटेक कर आगे जाने वाले को गाली देने की स्वतंत्रता है. स्साले कब से हॉर्न बजा रहा हूं, गाड़ी एक तरफ नहीं करता. गाली देने या सुनने का सुख जो हिन्दुस्तान में है, वह अमेरिका में कहां. इसीलिए अमेरिका मुझे पसंद नहीं.

प्रातः भ्रमण पर वहां निकल जाएं, परिचित हो या अपरिचित, पुरुष हो या महिला, हेलो हाय करते हुए हाथ हिलाकर अभिवादन अवश्य करते हैं. उस तरह हिन्दुस्तान के आभिजात्य वर्ग के दबदबे का वहां अभाव है. यहां छोटा आदमी ही बड़े को नमस्कार करता है और सभी स्वयं को बड़ा ही मानते हैं. अतः कोई किसी को क्यों नमस्कार करे. हेलो, हाय करने के आदी इन छोटे लोगों की बात क्या करना. इसीलिए अमेरिका मुझे पसंद नहीं.

वहां लेखक द्वारा पुस्तक भेंट करने की प्रथा नहीं है, लोग किताबें खरीदकर पढ़ते हैं. हिन्दुस्तान में लेखक से आशा की जाती है कि वह पुस्तक भेंट में देगा, बाद में पुस्तक भी अनपढ़ी रह जाएगी. कई पाठकों को पढ़ने का तो बहुत शौक होता है बशर्ते कोई किताब भेंट कर दे. वहां की राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय उड़ानों में कहीं जाइए, वे लोग पुस्तक पढ़ते हुए

*अमेरिका में फ्रिज, सोफा, वाशिंग मशीन बार-बार रिपेयर नहीं कराये जाकर कचरे के स्थान पर फेंक दिये जाते हैं, जो चाहे मुफ्त में ले जाए. वहां मनुष्यों के ही नहीं कुत्ते बिल्लियों के भी अस्पताल और डॉक्टर होते हैं, जहां अच्छा इलाज किया जाता है. वहां आदमी की जिन्दगी सबसे मूल्यवान मानी जाती है जिसे बचाया जाता है.*

या लेपटॉप पर काम करते हुए ही देखे जाते हैं. अपने में मगन रहते हैं. असल में निंदास्तुति करने की न उनकी आदत है, न अनुभव है, अतः क्या समझें उसका मज़ा. वे हमारी तरह काम कम और बातें ज़्यादा क्यों नहीं करते. छटांक भर की जीभ चलने में भी कंजूसी बरतते हैं. कंजूस कहीं के. इसीलिए अमेरिका मुझे पसंद नहीं.

वहां के उच्च पदासीन नागरिक भी स्वाधीन देश में रहते हैं, फिर भी समय के इतने पाबंद क्यों हैं. भारतीयों की तरह मन के राजा क्यों नहीं हैं. प्रतिनिधि बनते ही फिर वह चाहे जनता के हों या कर्मचारियों के हर कार्य विलंब से करना शुरू कर देते हैं. देरी से आने से उनकी धाक जम जाती है कि अब वह वहुत व्यस्त हो गये हैं. काम पर कभी भी आने कभी भी चले जाने की स्वाधीनता वहां नहीं है इसीलिए अमेरिका मुझे पसंद नहीं.

अमेरिका में बस में बैठने के लिए, सामान खरीदने के लिए, हर जगह लाइन में लगना पड़ता है, धक्कामुक्की करने की न कोई मानसिकता न ही आवश्यकता किन्तु जो मज़ा सामनेवाले को पटककर, उसे धूल चटाकर, बिना लाइन में लगे या सबसे बाद में लगकर, सबसे पहले सामान लेने में है, वैसा मज़ा अमेरिका में कहां. परिवार कल्याण कार्यक्रमों के लिए सरकार कितना भी जोर लगा ले, किन्तु कई बहादुर अभी भी लाइन लगाने में पीछे नहीं हैं. ऐसी शौर्यपूर्ण मानसिकता और तत्परता क्योंकि वहां नहीं है, इसीलिये अमेरिका मुझे पसंद नहीं.

वरिष्ठ नागरिकों के लिए थियेटर में फिल्म देखने, कटिंग कराने में या अन्य कई स्थानों पर तीस प्रतिशत की रियायत दी जाती है. वहां सीनियर सिटीजन की हजामत दस डॉलर में बन जाती है जबकि अन्य लोगों की पन्द्रह डॉलर में. स्पष्ट है उन लोगों को सही तरीके से हजामत करने का तरीका भारतीयों से सीखना चाहिए. यहां तो चारों ओर हजामत करने का लक्ष्य लिए विशेषज्ञ खड़े ही रहते हैं. यहां सिर्फ बाल कटवाने में ही नहीं प्रत्येक उपकरण या सामान खरीदने में दूकानदारों द्वारा हजामत कर दी जाती है. क्योंकि उन लोगों ने भारतीयों से सही तरीकों से हजामत करने के गुर नहीं सीखे इसलिए अमेरिका मुझे पसंद नहीं.

अमेरिका में अपंगों, अस्वस्थजनों, बुजुर्गों के लिए विशेष सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार देखा जाता है. बसों में चढ़ने उतरने बैठने के लिए उनकी विशेष व्यवस्था रहती है. वहां फ्रीज, सोफा, वाशिंग मशीन बार-बार रिपेयर नहीं कराये जाकर कचरे के स्थान पर फेंक दिये जाते हैं, जो चाहे मुफ्त में ले जाए. वहां मनुष्यों के ही नहीं कुत्ते बिल्लियों के भी अस्पताल और डॉक्टर होते हैं, जहां अच्छा इलाज किया जाता है. वहां आदमी की जिन्दगी सबसे मूल्यवान मानी जाती है जिसे बचाया जाता है. भारतवर्ष में फ्रीज, सोफा, वाशिंग मशीन बार-बार रिपेयर कराये जाते हैं, ये वस्तुएं कीमती मानी जाती हैं, किन्तु मनुष्य को प्रायः कुत्ते बिल्ली की मौत मरने के लिए छोड़ दिया जाता है. मां-बाप और अपंगों को जो चाहे मुफ्त में ले जाए. देख-रेख करे. बच्चे प्रगति कर रहे हैं. वहां रोगियों का इलाज पहले किया जाता है फीस बाद में ली जाती है, यहां रोगियों की थोड़ी सी शल्य चिकित्सा करके उसे मनमानी फीस बतायी जाती है, फिर कहा जाता है पहले फीस जमा कर दें ताकि आगे बढ़ा जाए. अन्यथा रोगी को अन्यत्र ले जाएं. अमेरिका ने ऐसी प्रगति नहीं की इसलिए अमेरिका मुझे पसंद नहीं.■

शशांक दुबे

१३ अक्टूबर १९६२ को उज्जैन में जन्म. पहल, वसुधा, कथा देश, उद्‌भावना, अहा! ज़िंदगी, नईदुनिया, नवभारत टाइम्स, जनसत्ता सहित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य, लेख व अनुवाद प्रकाशित. वागर्थ में २००४ से २००७ तक व्यंग्य कॉलम 'छींटे' तथा नया ज्ञानोदय में २००८ से सिनेमा पर 'मैटिनी शो' कॉलम का प्रकाशन. उज्जैन की साहित्यिक संस्था 'साहित्य मंथन' की ओर से सम्मिलित प्रयास के रूप में तीन व्यंग्य संकलन 'लोकतंत्र के चूहे', 'आत्मा की कमीज़' और 'आम आदमी का हलफ़नामा' का प्रकाशन. संप्रति - एक सरकारी बैंक से संबद्ध.

संपर्क : ३७/८०१, एनआरआई कॉम्प्लेक्स, सी-वूड एस्टेट, नेरुल, नवी मुम्बई ४०० ७०६. ईमेल - s.dubey1310@yahoo.co.in

किताब

# बात निकलेगी तो दूर तलक जाएगी

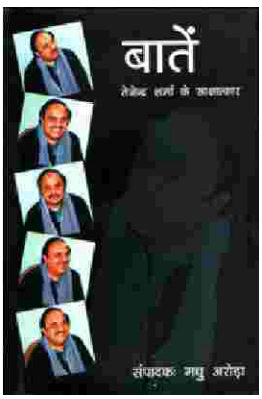


आलोचकों की क्रूर, साहित्यकारों की याचक और प्रकाशकों की आर्थिक दृष्टि में आज भी हिंदी साहित्य में उपन्यास, कहानी और कविता को क्रमशः एक-दो-तीन माना जाता है. लेकिन पाठक नामक वह शख़्स, जो अब भी बचा है और जो इनमें से कोई नहीं है और जो बहुत कम संख्या में है, वह संस्मरणों को नंबर एक, जीवनियों को दूसरे नंबर पर और साक्षात्कारों को तीसरे नंबर पर मानता है. इसलिए कि जब वह संस्मरण या जीवनी या साक्षात्कार की कोई किताब पढ़ता है तो इस बहाने कई-कई ज़िंदगियों के जटिल सवालों, तार्किक या अतार्किक जवाबों, जीवन की गहराइयों, कठिनाइयों, सरलताओं और रंगों से गुज़रता है. इसीलिए बुकस्टॉल पहुंचते ही उसकी निगाह हाशिये की विधाओं वाली किताब तलाशती है. जो लोग तेजेंद्र शर्मा को अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान के आयोजक के रूप में जानते हैं उन्हें किताब का शीर्षक 'बातें : तेजेंद्र शर्मा के साक्षात्कार' देखकर यह गफलत हो सकती है कि यह तेजेंद्र शर्मा द्वारा समय-समय पर लिए गए साक्षात्कारों की किताब है. पाठक अंदाज़ लगाता है कि संभवतः इसमें चित्रा मुद्‌गल, संजीव, ज्ञान चतुर्वेदी, विभूति नारायण राय, नासिरा शर्मा, प्रदीप सौरभ जैसे उन साहित्यकारों के साक्षात्कार होंगे, जिन्हें विगत १८ सालों में यह सम्मान मिला है. हो सकता है, इसमें गिरीश कर्नाड, रवीन्द्र कालिया या ओम थानवी जैसे साहित्यकारों से गुफ्तगू हो, जो लंदन में आयोजित इन कार्यक्रमों में उनके मुख्य अतिथि रहे हों. इतने बड़े नाम होंगे तो मसाला तो बहुत होगा, इसी उम्मीद में वह तेज़ी से अनुक्रमणिका पढ़ना चाहता है. देखें तो सही, सवालों की गुगली में किस-किसको उलझाया गया है? लेकिन यह क्या? अनुक्रमणिका में मोहन राणा, कालूलाल कुल्मी, मीनाक्षी जिजीविशा और प्रीत अरोड़ा जैसे अजनबी नाम पढ़कर वह चौंक उठता है. फिर वह किताब की भूमिका देखता है, भीतर-बाहर के फ्लैप पलटता है, तब उसे मालूम पड़ता है कि श्रीमानजी यह किताब तेजेंद्र शर्मा द्वारा लिए गए साक्षात्कारों की नहीं, बल्कि उनके द्वारा दिए गए साक्षात्कारों की है, जिसे कथाकार और कथा यूके की सक्रिय कार्यकर्ता मधु अरोड़ा ने संपादित किया है.

जीवनी और साक्षात्कार, साहित्य के हाशिए पर मौजूद ये दोनों विधाएं लोकप्रिय तो हैं, लेकिन इनमें बुनियादी तौर पर एक बड़ा अंतर है. जहाँ जीवनी किसी साधारण आदमी की भी रोचक हो सकती है, वहीं साक्षात्कार, ख़ास तौर पर साहित्यकार का साक्षात्कार, तब तक पुनर्पठनीय नहीं हो सकता, जब तक कि उसमें दो-चार कंट्रोवर्सी न हो, कुछ इश्क-मुहब्बत, कुछ मान-मलौवत, कुछ सिर-फुटौवल, कुछ पेग-शेग या इसी किस्म की धड़न तख्ता बातें न हो. तेजेंद्रजी सिगरेट शराब से कोसों दूर रहने वाले वैष्णवी व्यक्ति हैं. औरतों का तो सवाल ही नहीं उठता. जो व्यक्ति अपनी दिवंगत पत्नी की स्मृति में परदेस में अठारह वर्षों से एक आयोजन कर रहा है, वह पारिवारिक व नैतिक दृष्टि से इतना संवेदनशील होगा कि उसमें अन्य नारी का आगम असंभव ही है. ऐसे में पाठकों को मसाला कहाँ से मिलेगा? जब सतह पर मसाला ढूँढने वालों को निराशा हाथ लगती है, तो गहरे उतरने वाले इसमें मोती की तलाश में उतरते हैं. और यह अच्छी बात है कि उन्हें बैरंग नहीं लौटना पड़ता है. अपने साक्षात्कारों में तेजेंद्र ने कुछ बातें ऐसी कही हैं, जो निकलेंगी तो दूर तलक भी जा सकती हैं.

हिंदी साहित्य में ऐसे लोगों की भरमार है, जिन्हें मामूली बातों में भी तर्कों-कुतर्कों के ज़रिये वज़न पैदा करने की आदत होती है. साहित्य, कला और संस्कृति के जटिल सवालों को तो छोड़िए, सिनेमा जैसी लोक-मनोरंजन की सामान्य विधा पर भी वे इतनी लप्पेबाज़ी करेंगे कि यदि आम आदमी उन्हें सुन ले, तो आइंदा फ़िल्म न देखने की कसम खा ले. मगर तेजेंद्रजी बिल्कुल सीधे-सादे शब्दों में बिना लाग-लपेट के अपनी बात रखते हैं. जब निर्मला भुराड़िया उनसे पूछती हैं कि प्रवासी भारतीय को आप कैसे परिभाषित करेंगे, तो छूटते ही कह डालते हैं कि इस टर्म को मैं आज तक नहीं समझ पाया. अपने पात्रों के बारे में वे साधना अग्रवाल को साफ-साफ बताते हैं कि भई मेरा आम आदमी वैसा आम आदमी नहीं होगा, जैसा अन्य लेखकों की रचनाओं में होता है. मेरा आम आदमी दुबई

*यह किताब हमें साक्षात्कारों की उस दुनिया से साक्षात्कार कराती है, जहाँ आरोप-प्रत्यारोप नहीं हैं, जहाँ आपसी सिर फुटौवल नहीं है, जहाँ साहित्यिक राजनीति नहीं है. यह एक ऐसी दुनिया है, जहाँ साफ-साफ दो टूक बातें कही गई हैं.*

का आदमी हो सकता है, लंदन का भी आदमी हो सकता है. जब उनसे पूछा जाता है कि साहित्य के लिए समय कैसे निकाल लेते हैं तो वे कहते हैं कि मैं न तो सिगरेट पीता हूँ न शराब. लिहाज़ा फ़ुरसत के समय लेखन ही करता हूँ.

आम तौर पर लेखक यह बताया करते हैं कि उनकी पहली कहानी काफी ज़द्दोज़हद के बाद छपी या पहला संकलन निकलवाने के लिए प्रकाशक के पास अंटी ढीली करनी पड़ी या फलां कहानी के उन्होंने अठारह ड्राफ्ट लिखे, लेकिन तेजेंद्रजी यहाँ भी दो टूक बात रखते हैं. जब उनसे सवाल किया जाता है कि लेखक के रूप में स्थापित होने के लिए क्या उन्हें संघर्ष करना पड़ा तो वे बताते हैं कि जब पहली कहानी लिखी तो पत्नी इंदुजी हंसी कि यह भी कोई कहानी है, क्योंकि उन्होंने अंग्रेज़ी में सोचा था और हिंदी में लिखा था, बाद में उन्होंने यही कहानी अपनी मातृभाषा पंजाबी में सोची और फिर हिंदी में लिखकर इंदुजी को सौंप दी. उन्होंने बाइस पेज की कहानी को एडिट कर बारह पन्नों का कर दिया, जिसे लेकर वे सीधे ही नवभारत टाइम्स के तत्कालीन संपादक विश्वनाथ सचदेव के पास पहुँच गए, जिन्होंने तीन हफ्ते में ही कहानी छाप दी. ऐसे ही जब दस कहानी इकट्ठी हो गईं, तो फाइल बनाकर वाणी प्रकाशन के माहेश्वरी बंधुओं के पास पहुँच गए, जिन्होंने न सिर्फ उनका संकलन छापा, बल्कि उनसे स्थायी संबंध भी बन गए.

इसी प्रकार जब उनसे सवाल किया जाता है कि इन दिनों आप क्या पढ़ रहे हैं, तो साफ-साफ बता देते हैं कि वे नहीं बताएंगे, क्योंकि लोग नाम सुनकर यह अंदाज़ लगाने लगेंगे कि इस बार का इंदु शर्मा कथा सम्मान किसको मिल रहा है. जीवन में जितनी साफगोई उन्हें पसंद है, उतने ही पसंद हैं पाक-साफ लोग. साहित्य में राजनीति करनेवालों को तो वे कतई नहीं बख्शते और बिना अपने लिटररी कैरियर की परवाह किए कह देते हैं कि हिंदी साहित्य का नुकसान दो लोगों ने बहुत किया है. वे अपनी पीढ़ी को इस बात के लिए कोसते भी हैं कि उसने कोई अच्छा आलोचक तैयार नहीं किया और आज भी वह पचहत्तर या अस्सी प्लस उम्र के आलोचकों को ही तकती रहती है. अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में वे यह रोचक खुलासा भी करते हैं कि वे रेल चलाते-चलाते ग़ज़ल के शेर तैयार कर लेते हैं. जैसे ही शेर बना, उसे काग़ज़ पर लिख डालते हैं. बाद में घर जाकर उसकी पॉलिश करते हैं और इसी प्रकार चंद शेर इकट्ठे होकर ग़ज़ल का रूप धारण कर लेते हैं. तेजेंद्रजी की यह रचना प्रक्रिया साठ के दशक की कहानीकार त्रयी की रचना प्रक्रिया के बिल्कुल उलट है, जो हर नया उपन्यास लिखने के लिए छुट्टियों पर पहाड़ चले जाते थे. अच्छा रचनाकार वही है, जो भीड़ से, समाज से या अपने कर्तव्य से पलायन कर केवल कलम न तोड़ता फिरे, बल्कि सही रचनाकार वही है, जो काम भी करे, लोगों से मिले-जुले भी और रचना-धर्मिता का भी पालन करता रहे.

तेजेंद्र के इन साक्षात्कारों में एक बात कई बार कही गई है और जो उनके मौलिक नज़रिये के कारण ध्यान आकृष्ट करती है. वे गुलशन नंदा की पुरज़ोर वकालात करते हुए कहते हैं कि उनके उपन्यास बच्चों को पढ़ाने चाहिए. गुलशन नंदा साठवें और सत्तरवें दशक की एक ऐसी शख़्सियत थी कि उनका नाम चलता था. उनके लिखे उपन्यासों पर 'नीलकमल', 'पत्थर के सनम', 'कटी पतंग', 'दाग़', 'जुगनू', 'झील के उस पार' जैसी कई सुपर हिट फ़िल्में बनीं. उनके चुकने के बाद हिंदी में कोई ऐसा उपन्यासकार नहीं उभर सका, जिसकी लेखनी बॉक्स ऑफिस पर सोना उगले. आज जब हम आमिर खान एंड कंपनी को 'थ्री इडियटस' के प्रेरणा स्रोत चेतन भगत से उलझते हुए देखते हैं, तब लगता है कि यदि हिंदी में भी पठनीय व रोचक उपन्यासों का सिलसिला चलता रहता, तो हमारे फ़िल्मकारों के पास भी कई विकल्प होते और वे अंग्रेज़ीदां लेखक को भाव देने की बजाए, ऐसे लेखक को तवज्जो देते जो अपनी मातृभाषा में सोचता है और इसी में रचता है. पुस्तक में प्रकाशित प्रत्येक साक्षात्कार के अंत में यदि उनके लिए जाने का मूल वर्ष भी अंकित रहता तो पाठकों को तत्कालीन समय को समझने व उससे तादात्म्य बिठाने में मदद मिलती. कुल मिलाकर मधु अरोड़ा द्वारा कुशलतापूर्वक संपादित यह किताब हमें साक्षात्कारों की उस दुनिया से साक्षात्कार कराती है, जहाँ आरोप-प्रत्यारोप नहीं हैं, जहाँ आपसी सिर फुटौवल नहीं है, जहाँ साहित्यिक राजनीति नहीं है. यह एक ऐसी दुनिया है, जहाँ साफ-साफ दो टूक बातें कही गई हैं, कुछ इस अंदाज़ में कि आ बता दें कि तुझे कैसे जिया जाता है.■

**बातें : तेजेन्द्र शर्मा के साक्षात्कार**
**सम्पादक : मधु अरोड़ा**
**मूल्य : १५० रुपये**
**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब, सम्राट कॉम्पलेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१ (म.प्र.)**

# नॉर्थ कैरोलाईना में सांस्कृतिक आयोजन सम्पन्न

विगत दिनों हिन्दू भवन, नॉर्थ कैरोलाईना के खुले प्रांगण में लाईट एवं साउंड के मिश्रण के साथ गीत-संगीत, नृत्य और नाटक के सम्मिश्रण की प्रस्तुति का एक भव्य कार्यक्रम आयोजित किया गया. इस कार्यक्रम से 'लर्निंग सेण्टर', जो मोर्रिस्विल्ले, नॉर्थ कैरोलाईना में बनाए जाने की योजना है, के लिए धन एकत्रित किया गया. इस 'लर्निंग सेण्टर' में ८०० से अधिक बच्चे हिन्दी के साथ-साथ भारत की अन्य भाषाएँ पढ़ेंगे, संस्कार अकादमी की कक्षाएँ भी लगेंगी.

इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसे स्थानीय कलाकारों ने पिछले छह महीने की मेहनत से तैयार किया था. भारत से कलाकारों को बुला कर किए जाने वाले कार्यक्रम बहुत महंगे पड़ते हैं और फिर एकत्रित किए धन का बहुत सा हिस्सा प्रोमोटर और आर्टिस्ट ले जाते हैं. इसलिए शिडोरी प्रोडक्शनस को यह काम सौंपा गया, जिसमें सभी कलाकार स्वयंसेवी हैं.

'रास्ते' शो की स्क्रिप्ट ऐसी थी कि उसमें गीत-संगीत, स्ट्रीट प्ले, नृत्य, दृश्य, ध्वनि और रौशनी का प्रयोग कर प्लेटफार्म का समा बांधा गया था. लाहौर से दिल्ली और दिल्ली से मुम्बई जाने वाली गाड़ी में बातचीत, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, झाँसी और अंत में मुम्बई स्टेशन पर कलाकारों का मजमा, हर स्टेशन के मजमे में नाटक, नृत्य और वहीं पर गाड़ी के डिब्बे में हो रही बातचीत से सम्बंधित गाने के दृश्य का उभरना और गायकों का वही गीत गाना ऐसा समय बाँधता था कि जनता विभोर हो गई.

दर्शकों ने चायवाला के रोल में आमोद सत्संगी, आशिक (राज जुनेजा), भिखारन, बूढ़ी औरत, पंजाबन और पागल लड़की (सुधा ओम ढींगरा) को बहुत पसंद किया. गायक और गायिकाओं में रवि कल्मथ, श्रीराम कृष्णास्वामी, प्रशांति श्रीनिवास और भारती जावालकर को बेहद पसन्द किया गया, जबकि अन्य गायक-गायिकाएँ दर्शकों की अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरे. जैसल अमीन भारतीय मूल की युवा लड़की की इस शो में प्रस्तुति बहुत पसन्द की गई.

भारतीय मूल की युवतियाँ भावना सिंह, अनामिका सत्संगी और करीना जावालकर का नृत्य भी बहुत पसंद किया गया. गाड़ी के डिब्बे में बैठे यात्री अपनी बातचीत से दर्शकों

> *तैयार होने वाले 'लर्निंग सेण्टर' में ८०० से अधिक बच्चे हिन्दी के साथ-साथ भारत की अन्य भाषाएँ पढ़ेंगे एवं यहाँ संस्कार अकादमी की कक्षाएँ भी लगेंगी.*

को बाँधने में सफ़ल रहे. मुख्य चरित्र कावेरी (निरुपमा सिस्टा), पठान (हरीश अम्बले), मिस्टर अइयर (रमेश कालाग्नानाम), बलविंदर (बलजीत सिंह), मिस्टर भल्ला (श्रीनिवास जोशी) को उनके स्वाभाविक अभिनय के लिए बहुत सराहा गया.

इस शो की परिकल्पना और निर्देशन किया था— रवि देवराजन, बिंदु सिंह और सुधा ओम ढींगरा ने. स्क्रिप्ट लिखी थी– बिंदु सिंह और सुधा ओम ढींगरा ने. विडियो इंजीनियर थे राजीव रामराजन, ऑडियो इंजीनियर, शिवा रघुनानन और लाइट इंजीनियर थे संजय भस्मे. विद्याधर कुलकर्णी, कृष्ण जोशी, ललिता देवराजन ने संगीत संयोजन में सहयोग दिया. भारतीय समुदाय ने जोर-शोर से इस शो में हिस्सा लिया और हॉल खचा-खच भरा था. सुबोध जोशी, मधु मेंदिरत्ता, अशोक मेंदिरत्ता, प्रिया जुनेजा, नीलाक्षी फुकन, मधुर माथुर, ममता बिसारिया, प्रकाश सिस्टा, अंनत सिंह, अर्जुन देवराजन, मेधा देवराजन आदि ने अलग-अलग स्टेशनों पर भिन्न-भिन्न पात्रों को जीवंत किया.■

**प्रस्तुति : दर्पण शर्मा**

गर्भनाल के अगस्त-२०१२ अंक में ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव जी का 'प्रतीक्षा' आलेख पढ़ा. 'प्रतीक्षा' में खर्च की वास्तविक क्षमता आने तक प्रतीक्षा नहीं कर पाने और भोग विलास के साधन जुटाने के सपने देखने से नयी जनरेशन में उपज रहे संत्रास की बात बहुत ही सटीक उदाहरण से कही गयी है, मेरे मन में भी कुछ इसी तरह का विचार आ रहा था. हम कमाई, विस्तार, अभ्युदय जन्म इत्यादि की बातों में तो रस लेते हैं पर यह नहीं सीख सके हैं कि मृत्यु, असफलता, खर्च, गिरती अवस्था और विघटन को कैसे स्वीकारा जाए. जबकि दुनिया इकतरफा नहीं है - दोनों का होना सार्वलौकिक और सार्वकालिक अवधारणा है. यहाँ तक कि इस समूचे भौतिक ब्रह्मांड को भी जन्म और मृत्यु दोनों तरह के दौर से गुजरना होता है. सारी की सारी शिक्षा आज बच्चों को यह सिखाने पर केंद्रित है कि कमाया कैसे जाए पर कोई उन्हें यह नहीं सिखाना चाहता कि खर्च कैसे किया जाए. यही कारण है कि वे चाहे जितना कमा रहे हों, उन्हें इस का जरा भी अंदाज नहीं नहीं है कि कमाई को कैसे व्यवस्थित किया जाए. यह कुछ ऐसा ही है कि कोई व्यक्ति जो १००,००० डॉलर कमा रहा हो - ९९,९९० डॉलर खर्च कर देता है और १० डॉलर बचाता है, पर जो व्यक्ति १०,००० डॉलर कमाकर डॉलर ९,००० खर्च कर करता है, तो वह १००० डॉलर तो बचा ही लेगा. जाहिर है ढंग से खर्च करने वाला कम आमदनी होने पर भी अधिक बचा ले जायेगा.

**डॉ. माधवी सिंह**, अमेरिका

गर्भनाल का ताजा अगस्त-२०१२ अंक पढ़ा. ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव का आलेख 'प्रतीक्षा' पढ़ा. उन्होंने प्रतीक्षा जैसे शब्द को कितने रूपों में सजाया यह उनकी लेखन शक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है. पढ़कर बहुत अच्छा लगा.

**सुभाष शर्मा**, ऑस्ट्रेलिया

बीनू भटनागर का आलेख 'हिन्दी सबकी है' बहुत पसन्द आया. उनके हिन्दी प्रेम के साथ व्यावहारिकता का सम्मिश्रण सचमुच प्रशंसनीय है.

**वेद मित्र**, यू.के.

गर्भनाल के अगस्त-२०१२ अंक में ओम गुप्ता की 'क्यों जन्मे थे कृष्ण' रचना पढ़ी. उन्होंने बड़ा ही सटीक तुलनात्मक विवेचन किया श्रीकृष्ण अवतार का मानव जीवन से और हमारे संस्कारों से. मन के भावों को पंक्तियों में पिरोकर उन्होंने सबके मन की बात कह दी है. उम्मीद है ओम जी की रचनाएँ इसी तरह पढ़ने को मिलती रहेंगी. वे साधुवाद स्वीकार करें.

**उमेश ताम्बी**, फिलाडेल्फिया

गर्भनाल हेतु आपका प्रयास सराहनीय है. साहित्य की गर्भनाल से, साहित्य की अनेक विधाओं को अपने में समेटे गर्भनाल पत्रिका, पाठकों को अनुभूति के धरातल पर आनंदित एवं वैचारिक धरातल पर आलोड़ित करती, उनके हृदय की अतल गहराइयों में उतरती चली जाये, यही शुभकामना है.

**स्नेह ठाकुर**, कनाडा

इस अंक में व्याख्या के अतिरिक्त, कवितायें एक से बढ़कर एक हैं. मुश्ताक अली खानजी की कविता, दूसरे रचनाकारों की रचनाएँ जैसे, मोक्ष, साथ, तुमने नहीं देखा, सूर्यास्त और मेरा मन, क्यों जन्मे थे कृष्ण, सभी मन को छू लेने वाली हैं.

**आशा मोर**, त्रिनिदाद

गर्भनाल का अगस्त-२०१२ अंक प्राप्त हुआ. पूर्व में भी इसके अनेक अंक देखता रहा हूं. इस बार गौतम सचदेव पर संस्मरणात्मक सामग्री देकर आपने बहुत अच्छा किया है. मेरी निगाह में यह पत्रिका अनेक कारणों से महत्वपूर्ण है. एक तो इसमें ग्लोबल दृष्टि रहती है और दूसरे भारतीय संस्कृति की प्राचीन संपदा से भी अवगत कराया जाता है. साथ ही अपना समसामयिक साहित्य तो होता ही है. इस बार का संपादकीय बहुत विचारणीय है. बधाई.

**दिविक रमेश**, नयी दिल्ली

गर्भनाल का ताजा अंक प्राप्त हुआ. अंक हिन्दी के वैश्विक परिवार की पंजिका है, जहाँ एक ओर हिन्दी की व्यापकता को दर्शाती है, वहीं दूसरी ओर उसके घनीभूत प्रेम को परिभाषित भी करती है. देश-विदेश के रचनाकारों को आपने सहभागी बनाया है. यह जुड़ने का मौसम सा लगा. श्री विजय कुमार सिंह की रचना बहुत अच्छी लगी. मंजु मिश्र जी कैलिफोर्निया से खुशी के बीज बो रही हैं. डॉ. मान्धाता सिंह का सांस्कृतिक आलेख बहुत पसन्द आया. सभी कुछ एक नई सुहानी दुनिया में पहुँचने का एहसास है. रचनाओं के साथ चित्र आदि बहुत सटीक व अनुकूल हैं.

**शुभदा पांडेय**, सिलचर, असम

गर्भनाल का ६९वाँ अंक देखा. अपनी बात में नैहर गाँव की जानकारी रोचक है. यह सही है कि भारतीय समाज के रीति-रिवाज धर्म से जुड़े हैं शायद इसलिये कि इंसान धर्मभीरू है. हिन्दी सबकी है लेख सटीक है. पल्लवी सक्सेना, प्रेमेन्द्र मिश्र की कविताएँ समय की धार में बहा ले जाती हैं. कुल मिलाकर अंक सराहनीय है.

**संतोष श्रीवास्तव**, मुंबई

गर्भनाल पत्रिका का वेब संस्करण नियिमत रूप से मिलता है. सामग्री समेत रूप-सज्जा का जैसा विलक्षण कौशल इसमें देखने को मिलता है, वह स्पृहणीय है. बधाई और मंगलकामनाएं स्वीकार करें. कभी-कभी इस पत्रिका का मुद्रित संस्करण भी मिला है. आपने मुझे यह सम्मान दिया है, मैं आभारी हूं.

**डॉ. देवशंकर नवीन**, नयी दिल्ली

# आपकी बात

'गर्भनाल' का ताजा अंक मेरे आँखों के सामने से गुजर गया. हर पृष्ठ अपने में बेहतरीन. श्रीमती स्नेह ठाकुर रचित कहानी वास्तविकता को छूती हुई लगी. श्रीमती संगीता स्वरूप जी से 'खिल उठे पलाश' के बारे में पढ़ कर लगा कि ये पुस्तक अपने बुक शेल्फ में रखने लायक है.

**मुकेश कुमार सिन्हा**

गर्भनाल का का अगस्त अंक पढ़ा. साज-सज्जा व चित्र अति उत्तम हैं. वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. गौतम सचदेव के स्मृतिशेष में श्री प्राण शर्मा और श्री वेद मित्र के उद्‌गार पढ़े. किसी के जाने के बाद यादों का ख़ज़ाना ही तो रह जाता है. मेरी ओर से दिवंगत साहित्यकार को श्रृद्धाँजलि. ईश्वर उनकी पुण्यात्मा को शाँति दे. कविता 'मोक्ष' बहुत अच्छी लगी.

**बीनू भटनागर**

गर्भनाल पत्रिका को पिछले कुछ समय से देख रहा हूं. बहुत सुंदर और स्तरीय पत्रिका है.

**शेर सिंह**, गाजियाबाद

आप नियमित रूप से मुझे गर्भनाल के अंक भेज रहे हैं आपका बहुत बहुत धन्यवाद. पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया भेजूंगा. शुभकामनाओं के साथ.

**गोविन्द प्रसाद बहुगुणा**

गर्भनाल का अंक हमेशा की तरह सुखद अनुभूति दे गया. सम्पादकीय में श्री बी.बी. मिश्रा के विचार चिन्ता का नया आयाम खोलते हैं. वजाहत से बात पठनीय है. कविताओं का चयन सुन्दर है. आभार.

**अशोक सिंघई**, भिलाई

Thanks for providing the hindi magazine 'Garbhnaal' on internet. Mostly contributed by NRI writers. The beautiful idea is really praiseworthy.

**Shailanchali,** Hisar, Haryana

I found the article by Brijendra Srivastava ji – pratiksha utsav utsukta hai pratiksha - to be excellent and absolutely original. The essence conveyed by the author is a must required to be practiced in daily life – make waiting a festival and enjoy your life.

**Vinay Mehta**

राजकिशोर जी का लेख कृष्ण और सुदामा के नए रिश्ते पढ़ा- सही कहा उन्होंने कि अब शिक्षा के अधिकार में गरीब व अमीर बच्चे साथ-साथ पढ़ेंगे. प्रश्न लाजिमी है लेखक का कि ये अमीर स्कूल तैयार कैसे हो गये. सरकार ने उन्हें हर खर्चा देने का वादा किया है जो भी वो करेंगे. यहाँ मजेदार तथ्य ये उभर आया है कि क्या-क्या फ्री है स्पष्ट नहीं किया. अपनी बात में गाँव में मनुष्यों के अजीब से व्यवहार का चित्रण किया है. पढ़ लिख कर भी रीतिरिवाजों का पालन अजीब ही बात तो है. मेरी बेटी ने अभी तक जैन धर्म के बारे में नहीं जाना था एक दिन जैनियों का वह धर्म जो वस्त्र नहीं पहनता उसकी बैड़बाजों के साथ जाती सवारी को देख कर आश्चर्यचकित हुई. मम्मी ये क्या है, ये तो गलत है ऐसे घूमना. वक्त के साथ हमें सभ्य हो जाना चाहिए पर हम अभी भी वही हैं जो गलत है. बदलाव जरूरी है. प्राण शर्मा जी एवं वेदमित्र जी द्वारा डॉ. गौतम सचदेव का परिचय बताता है हम ने एक अच्छा लेखक खो दिया है. शर्मा जी व वेदमित्र जी खुशनसीब हैं, उनसे मिले व उनको जाना, हमें वो अवसर न मिल पाया. बीनू भटनागर द्वारा लिखित हिन्दी किसकी है दिल को छूता है कि हमारे बच्चे न तो हिन्दी सीख पाये न ही अंग्रेजी क्योंकि हम इस ओर भागे तो हैं पर बच्चों तक सही निर्देशन नहीं पहुँचा पा रहे जो चिन्ता का विषय सबके लिए है और इसके लिए घर से प्रयास होना जरूरी है. हिन्दी व अंग्रेजी दोनों ही विषय बच्चे को बुलन्दियाँ छूने में मदद करेंगे अतः एक विषय को पीछे छोड़कर दूसरे के पीछे भागना गलत है

**बबीता वाधवानी**, जयपुर

गर्भनाल का अगस्त संस्करण पढ़ा, सच कहूँ तो जितना सुना था, उस से कुछ ज्यादा पाया. पत्रिका ना केवल प्रस्तुतीकरण में बेहतरीन हैं वरन साहित्यिक सामग्री के मायनों में भी कमाल है. विशेषतः श्याम कृष्ण भट्ट जी की रचना 'साथ' दिल को छूती है, वृद्धावस्था में साथी की उपयोगिता, उसकी जरूरत को दर्शाती है. वहीं नीरज गोस्वामी जी का लेख 'शायरी की बात' जो कि मुनव्वर राणा जी को समर्पित है पढ़ कर मन प्रसन्न हुआ. मैं उनसे पूर्ण रूप से सहमत हूँ कि जिस साफगोई से मुनव्वर जी अपनी बात आवाम के दिलों तक पहुंचाते हैं, वो अंदाज़ अपने आप में विरला है. आपके बेहतरीन प्रयास हेतु पूरी गर्भनाल टीम को साधुवाद.

**पूजा भाटिया**, इंदौर

Garbhanal is quality magazine. Articles are good and they provide readers a lot of useful material for thinking. Your selection and editing is worth appreciating. Readers feel satisfied. Keep it up.

**Dileep Bhatia**, Rawatbhata

I have read the whole Garbhanal magazine with interest. I found mahabharat details quite new and different we usually here at satsanga/pravachans. secondly, i was really fascinated by the editorial dealing with a village. Chullahas to dakshin side, no auto or taxi takes you there; you remain without food by uttering the name of the village; all these even today! todays india? I forward garbhanal soft copy to few of my known ones.

**B.K. Tibarewala**